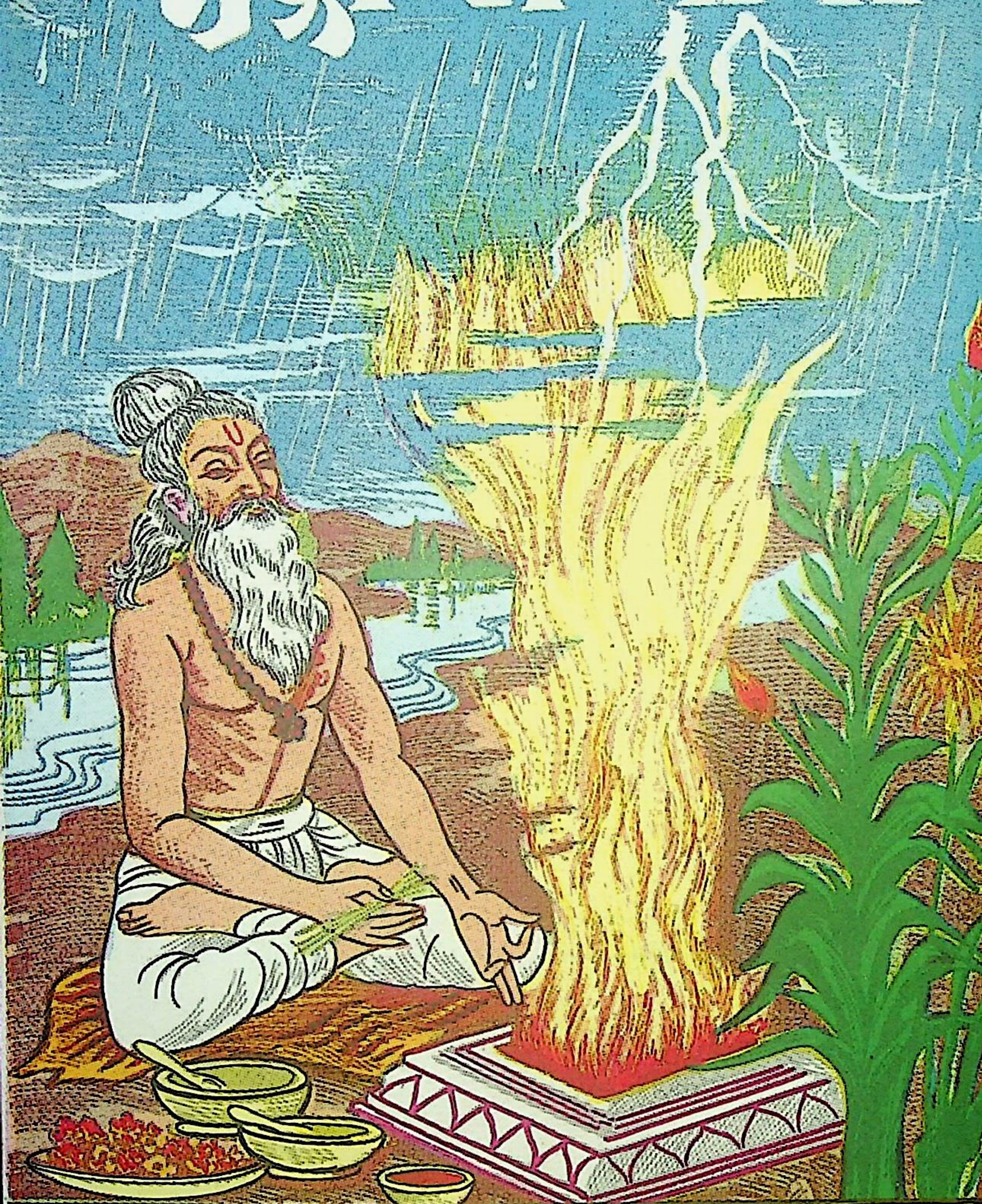
रुद्राष्टाध्यायी



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४००००४.

श्रीः

श्रीयजुर्वेदीय

रुद्राष्टाध्यायी

मुरादाबादनिवासियजुर्वेदभाष्यकारविद्यावारिधि
श्रीपण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत
संस्कृतार्य्यभाषाभाष्यसमन्विता

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास™,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण : जनवरी २०१६, सवंत् २०७२

मूल्य : १०० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.



पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र।

समर्पणपत्रम्

श्रीयुत सर्वगुणसम्पन्न अखण्ड प्रौढप्रताप
गोब्राह्मणप्रतिपालक श्रीमन्महाराजाधिराज
नेकनामदार ठाकुर साहब श्री १०८

श्रीठाकुर
हरिसिंहजी बहादुर महोदय

स्वस्थान
श्री "ध्रौल" काठियावाड़

की

सेवामें यह ग्रंथ सादर समर्पित है ।

अनुगृहीत--
पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्र,
मुरादाबाद.

भूमिका

सम्पूर्ण जगत्‌में वेदकी महिमा कौन नहीं जानता, वेद ही सम्पूर्ण ज्ञानका भंडार है सर्वज्ञ परमात्माका स्वरूपही वेद है, उपनिषद, स्मृति, पुराण, मीमांसासूत्रादिमें वेदकी महाप्रशंसा पाई जाती है, पाराशर स्मृतिमें लिखा है–'वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम., वेद साक्षात् नारायण स्वयम्भू ही है, ब्राह्मण भागमें भी वेद परमात्माका निःश्वसित कहा है–"अरे मैत्रेयि अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः" इति शतपथ० जबकि वेद, नारायणरूप नारायणप्रेरित अपौरुषेय और अनादि है और अनन्तकल्पोंके पहले भी विद्यमान था इसमें अनेक प्रमाण हैं तब यह सम्पूर्ण धार्मिक पुरुषोंकी श्रद्धाकी सामग्री है इसमें शंका ही क्या है ।

वेद अपने धर्मका मूलग्रंथ है, प्रवृत्ति लक्षण निवृत्ति लक्षण धर्म वेदमें विद्यमान हैं प्रवृत्ति लक्षणवाला धर्म, जिन पुरुषोंको वैराग्य नहीं है उनको क्रम क्रमसे निष्काम कर्मोंका बोध कराकर उनसे मनशुद्धि करके निवृत्तिकी ओर ले जाता है और निवृत्ति लक्षणवाला धर्म, ज्ञान, वैराग्यरूप होकर साक्षात् मोक्षका साधनरूप होता है, निवृत्तिलक्षणवाले धर्ममें भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और संन्यस्त इन आश्रमोंकी व्यवस्था है ब्रह्मचर्य आश्रममें वेदविद्याके ज्ञानकी प्राप्ति, सन्ध्या, अग्निहोत्र, देवपूजा आदि वैदिक कर्मोंको करते हुए आचार्यकी सेवा करना मुख्य कर्तव्य है, इस आश्रमकी संपूर्णरीति पालन करनेसे इंद्रिय और अन्तःकरण अपने वशमें होते हैं, पहले आश्रममें ही यदि जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्यकी इच्छा करे और नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर वेदाभ्यास और योग साधन करे तो भी मोक्ष मार्गमें पहुंचता है, इस आश्रमके उपरान्त ही चतुर्थ आश्रम संन्यास ग्रहणकर संसारके निवृत्त हो जाय. यदि इंद्रिय संयम नहीं हुआ है तो शक्तिके अनुसार आचार्यको दक्षिणा देकर प्रसन्नतापूर्वक पिताके घर आकर विवाह करके गृहस्थ आश्रममें वेदमें कहे धर्मोका अनुष्ठान करता रहे ।

गृहस्थाश्रममें पडकर जिससे मन, विषयलोलुप होकर अधोगतिको प्राप्त न हो, और अपनी वृत्तियोंको स्वच्छ रख सके इसके निमित्त रुद्रका अनुष्ठान करना मुख्य और उत्कृष्ट साधन है यह रुद्रानुष्ठान ही प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्ति मार्गको प्राप्त करानेमें समर्थ है

जिस प्रकार दूध में से मक्खन निकाल लिया जाता है इसी प्रकार द्विजातियोंके कल्याणके निमित्त यह रुद्राष्टाध्यायी वेदका साररूप महात्माओंने संग्रह की है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि इसमें गृहस्थ धर्म, राजधर्म ज्ञान, वैराग्य, शान्ति ईश्वरस्तुति आदि अनेक सर्वोत्तमविषयोंका वर्णन है ।

वेदमंत्रोंका विनियोग, अर्थ, ऋषियोंका स्मरणादि जाननेका माहात्म्य ब्राह्मण और अनुक्रमणिकामें विशेषरूपसे वर्णन किया है, अर्थ और विनियोगको जानकर जो कार्य किया जायगा वह कल्पवृक्षके समान विशेषरूपसे फलदायक होता है इससे अर्थका ज्ञान अवश्य होना चाहिये। जैसे 'हे रुद्र! रुत् दुःखं द्रावयति रुद्रः । यद्वा–'रुगतौ' ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः रवण रुत् ज्ञानम् भावे क्विप् तुगागमः । रुत् । ज्ञानं राति ददाति रुद्रः ज्ञानपदः । यद्वा पापिनो नरान् दुःखभोगेन रोदयति रुद्रः ।" इस प्रकार अर्थके ज्ञानसे विशेष प्रतिपत्ति होनेसे श्रुतिमें भी विशेषफल प्रतिपादन किया है (उतत्वः पश्यन्नः ददर्शवाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः) इत्यादि मंत्रोंमें अर्थ-ज्ञानकी प्रशंसा सुनी है, और (यद गृहीतमविज्ञानं निगदेनैवशब्द्यते । अनग्नाविवशुष्कै-घोनज्ज्वलतिर्कार्हिचित्) इत्यादि वाक्योंके द्वारा अर्थ न जाननेकी निन्दा सुनी है । दूसरा वचन भी निरुक्तमें लिखा है (स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेनं न विजानाति योऽर्थम् योऽर्थज्ञ इतः सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा) अर्थात्जो वेद पढ़-कर उसका अर्थ नहीं जानता वह ढूंढके समान भार ढोनेवाला है । और जो अर्थको जानता है वह सब कल्याणोंको प्राप्त होता है । और पापरहित हो वैकुण्ठको प्राप्त होता है, इन वच-नोंसे अर्थका जानना संपूर्ण कल्याणोंका करनेवाला है । जो कहते हैं कि "स्वाध्यायोऽध्ये-तव्यः" इस वचनसे पाठ मात्रसे ही कर्मानुष्ठानमें सफलता हो जाती है यह सत्य है, परन्तु अर्थज्ञानसे विशेष वीर्यवान् होता है, इससे अर्थज्ञान अवश्य होना चाहिये । इस विषयमें बहुतसे प्रमाण हैं, जिनका यहां लिखना हम उचित नहीं समझते वेदार्थ ज्ञानके निमित्त शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिषकी आवश्यकता होती है । पर भाष्योंमें ये सब सुलभ हो जाते हैं, इस कारण हमने संस्कृत और भाषा इन दो प्रकारोंसे रुद्राष्टाध्यायीका भाष्य आरंभ किया है ।

उपनिषद्स्मृति, पुराण आदिमें रुद्रजापका विशेष माहात्म्य वर्णन किया है मोक्षकी प्राप्ति, पापनाश, आरोग्य आयुष्यकी प्राप्ति, रुद्रजापसे होती है ।

जावाल उपनिषद्में लिखा है (अथ हैनं ब्रह्मचारिण ऊचुः किंजप्येनैवामृतत्वमश्नुत इति ब्रूहीति । स होवाच याज्ञवल्क्यः शतरुद्रियेण इति) अर्थ ब्रह्मचारियोंने याज्ञवल्क्य-ऋषिसे प्रश्न किया कि क्या जपनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । याज्ञवल्क्यने उत्तर दिया कि शतरुद्रियके जपसे ।

कैवल्य उपनिषद्में लिखा है – (यः शतरुद्रियमधीते सोग्निपूतो भवति स्वर्णस्ते-यात्पूतो भवति सुरापानात्पूतो भवति ब्रह्महत्यातः पूतो भवति कृत्याकृत्यापूतो भवति तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति अत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेदनेन ज्ञानमाप्नोति संसारा-र्णवनाशनं 'तस्मादेवं विदित्वैनं कैवल्यं फलमश्नुते' इत्याह शातातपः)

अर्थ जो शतरुद्रिय पाठ करता है वह जैसे अग्निसे निकले पदार्थ सुवर्ण आदि पवित्र हो जाते हैं, तद्वत् पवित्र होता है, सोनेकी चोरीके पापसे छूट जाता है, सुरापानके पापसे

रहित होता है, ब्रह्महत्यासे पवित्र होता है, कृत्याकृत्यसे पवित्र होता है आश्रमत्यागी भी एक
बार पाठमात्रसे पवित्र होता है, इसके अपसे ज्ञानको प्राप्ति

(प्रपद्यस्व) प्राप्नुहि (आमीषाम्) शत्रूणां मध्ये (कञ्चन) किंचिदपि (मा उच्छिषः) अवशिष्टं मा कुरु। शत्रूनुत्कृत्तत्तमूलान् कुर्वित्यर्थः। (यजु० १७।४५) ॥१३॥

भावार्थ—ब्रह्ममंत्रसे तीक्ष्ण किये हुए हे बाणरूप ब्रह्मास्त्र ! तुम हमसे छोड़े हुए एक साथ शत्रुसेनापर गिरो, गिरकर शत्रुओंको ग्रास करो और शत्रुओंके शरीरमें प्रवेश करके इनमें किसीको मत छोड़ो ॥१३॥

मन्त्रः

प्रेताजयंतानरऽइन्द्रोवःशर्म्मयच्छतु ॥ उग्रावःसन्तु-बाहवोनाधृष्ष्यायथासथ ॥ १४ ॥

ॐ प्रेत इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। योद्धा देवता वीरोत्तेजने। विनियोगः ॥ १४ ॥

भाष्यम्-(नरः) हे मनुष्याः नेतारः संग्रामस्य निर्वोढारो योद्धारः (प्रेत) प्रकर्षेण गच्छत गत्वा च (जयत) प्रतिभटान् जयत (इन्द्रः) इन्द्रः (वः) युष्माकम् (शर्म) कल्याणम् (यच्छतु) ददातु, किंच (वः) भवताम् (बाहवः) भुजाः (उग्राः) उद्गूर्णबलाः (सन्तु) भवन्तु। तथा (अनाधृष्याः) अन्यैरनभिभाव्याः (यथा) यथा यूयम् (असथ) भविष्यथ तथा वो बाहवः उग्राः सन्तु। (यजु० १७।४६) ॥१४॥

भावार्थ—हे हमारे योधामनुष्यो शत्रुओंकी सेनापर शीघ्रतासे जाओ, और विजय प्राप्त करो अवश्य जय होगी इन्द्र तुमको जयसे प्राप्त हुए सुखको प्रदान करें; तुम्हारी भुजयें उद्गूर्णायुधवाली हृष्ट पुष्ट हों, जिससे तुम कसीसे भी तिरस्कार न पानेवाले हो ॥१४॥

मन्त्रः

असौय्यासेनामरुतःपरेषामब्भ्येतिनऽ ओजसा स्पर्द्धमाना ॥ तांगूहततमसापव्व्रतेनयथामीऽअन्न्योऽअन्न्यन्नजानन् ॥ १५ ॥

ॐ असौ या इत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः। निच्यृदार्षी त्रिष्टुप् छं०। मरुतो देवता सेनोत्तेजने विनियोगः ॥१५॥

भाष्यम्–(मरुतः) हे मरुतः (असौ या सेना वाहिनी) (नः) अस्मान् (ओजसा) बलेन (स्पर्द्धमाना) स्पृहायुक्ता (परेषां) शत्रूणां (अभ्येति) अभिमुखमेति (ताम्) सेनाम् (अपव्रतेन) अपगतकर्मणा "व्रतमिति कर्मनाम" निघं० २।१७) (तमसा) अंधकारेण तथा (गूहत) व्याप्नुत (यथा) येन (अमी) योद्धारः (अन्यः अन्यम्) अन्योऽन्यम् (न जानन्) न जानीयुरित्यर्थः (यजु० १७।४७) ।।१५।।

भाषार्थ—हे मारुतो! वा हे सेनानायक गण ! जो यह शत्रुओंकी सेना बलसे स्पर्धा करती हुई हमारे सन्मुख आगमन करती है, उस सेना को कर्मरहित अन्धकार से इस प्रकार आच्छादित करो , कि–जिस प्रकार यह शत्रु सेनाके लोभ परस्पर नहीं जानते हुए परस्पर अस्त्र चलाकर नष्ट हों ।।१५।।

मन्त्रः

यत्रबाणाः॑सुम्पतन्तिकुमाराविशिखाऽइव ॥ तन्नुऽइन्द्रोबृहुस्पतिरदितिः॑शर्म्मयच्छतुविश्वाहाशर्म्मयच्छतु ॥ १६ ॥

ॐ यत्रेत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः पंक्तिश्छन्दः । ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च देवते । प्रार्थने विनि० ॥ १६ ॥

भाष्यम्–(यत्र) संग्रामे (विशिखाः) मुण्डिताः (कुमाराः) बालकाः (इव) (बाणाः) शराः (सम्पतन्ति) सम्यक्तया पतन्ति (तत) तत्र (इन्द्रः) इन्द्रः (बृहस्पतिः) बृहतां पतिः (अदितिः) देवमाता (शर्म) सुखम् (नः) अस्माकम् (यच्छतु)ददातु (विश्वाहा) सर्वदा (शर्म) सुखम् (यच्छतु) ददातु पुनरुक्तिरादासर्था (यजु० १७।४८) ।।१६।।

भाषार्थ—जिस रणक्षेत्रमें वीर गणोंके छोड़े हुए बाण इधर उधर गिरते हैं, जिस प्रकार शिखारहित बालटूरियोंवाले छोटे बालक चपलताके कारण इधर उधर फिरते हैं, उस युद्धमें बृहस्पति देवता अथवा मन्त्रोंके पालक विजयके उचित मन्त्रोंकी जाननेवाली देवमाता अथवा अखंडित शक्ति इन्द्र हमको कल्याणप्रदान करे, वह संपूर्ण शत्रुओंको मारने वाला कल्याण प्रदान करें ।।१६।।

मन्त्रः

सुम्मर्माणितेवर्म्मणाच्छादयामिसोमस्त्वाराजामृते नानु-

वस्ताम् ॥ उरोर्व्वरीयोव्वरुणस्तेकृणोतुजयन्तन्त्वानु-देवामदन्तु ॥ १७ ॥

इति सर्ठहितायां रुद्रजाप्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ॐ मर्म्माणीत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः सोमवरुणौ देवते । कवचप्रच्छते विनियोगः ॥ १७ ॥

भाष्यम्-हे राजन् (ते) त्वदीयानि (मर्माणि) येषु स्थानेषु सिद्धः सद्यो म्रियते तानि मर्माणि (वर्म्मणा) मंत्रपूतेन कवचेन (छादयामि) आच्छादनं करोमि (सोमः-राजा) सोमराजा (त्वा) त्वाम् (अनु) छादनानन्तरम् अमृतेन अमृतरूपेण द्रव्येण (वस्ताम्) आच्छादयतु (वरुणः) वरुणादेवोऽपि (ते) तव वर्म (उरोर्वरीय) उत्कृष्टादप्युत्कृष्टम् (कृणोतु) करोतु (जयन्तम्) जयशालिनाम् (त्वा) त्वाम् (देवाः) देवाः (अनुमदन्तु) प्रहर्षयन्तु। (यजु० १७।४९) ॥१७॥

भाषार्थ—हे राजन् मैं कवचसे आपके मर्मस्थानोंको [कि जिनके छिन्न होनेसे शीघ्रही मरण होता है] आच्छादन करता हूं, राजा सोम आपको अमृतसे आच्छादन करे, और वरुण आपके वर्मको उत्तमोत्तम करे, तथा देवता आपको विजय पाता देखकर आनन्द युक्त हों ॥१७॥ इत्यप्रतिरथसूक्तम्

इति श्रीरुद्राष्टके पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतार्य्यभाषाभाष्यसमन्वितस्तृतीयोऽध्यायः।३।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

मन्त्रः

विभ्राड्बृहत्पिबतुसोम्म्यम्मद्ध्वायुर्द्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ॥ व्वातंजूतोयोऽअभिरक्षतित्त्मनाप्रजाःपुपोषपुरुधाव्विराजति ॥ १ ॥

ॐ विभ्राडित्यस्य विभ्राड्ऋषिः जगती छन्दः । सूर्यो देवता । सौर्यपुरोरुक्मंत्रपाठे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्–(विभ्राट्) विशेषेण भ्राजते दीप्यत इति विभ्राट् सूर्यः (बृहन्) महत् (सोम्यम्) सोममयम् (मधु) मधु (पिबतु) पिबतु किङ्कुर्वन् (यज्ञपतौ) यजमाने (अविह्रुतम्) अकुटिलम् (आयुः) (दधत्) स्थापयत् (यः) सूर्यः (वातजूतः) महावायु वायुना प्रेर्यमाणः सन् (त्मना) आत्मना स्वयमेव (अभिरक्षति) सर्वं जगदभिपश्यन् पालयति "राशिचक्रस्य वायुप्रेर्यत्वात् सूर्यस्यापि तत्प्रेर्यत्वम्" सः सूर्यः (प्रजाः) प्रजाः (पुपोष) वृष्ट्यादिप्रदानेन पोषयति (पुरुधा) बहुधा (विराजति) विशेषेण दीप्यते च ॥ (यजु० ३३।३०) ॥१॥

भावार्थ-विशेष दीप्तिमान् सूर्य देवता यजमानमें अखंड आयुको स्थापन करते हुए बड़े स्वादुरससे युक्त सोमरूप हविको पान करो, जो सूर्य्य वायुसे प्रेरित आत्मा द्वारा प्रजाकी रक्षा करता वा पालता है पुष्ट करता है वह अनेक प्रकारसे विराजमान होता है। आशय यह कि–जो अधिक कान्तिमान् सूर्य परमात्माके नियमसे वायुसेगसे निरन्तर भ्रमण करते प्रजा वर्गकी रक्षा करते हैं पोषण करते हैं और चन्द्र नक्षत्रादिकी ज्योतिरूपसे अनेक रूपसे विराजमान हैं वह आज इस अति मधुर अधिक सोम रसका पान करें और यजमानकी आयुकी वृद्धि करें ॥१॥

मन्त्रः

उदुत्यञ्जातवेदसन्देवँव्वहन्तिकेतवः ॥ दृशेव्विश्वाय-सूर्य्यम् ॥ २ ॥

ॐ उदत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । भुरिगार्षी गायत्री छन्द । सूर्यो देवता । आज्येन शालाद्वार्येऽग्नौ हवने विनियोगः॥ २ ॥

भाष्यम्–(केतवः) सूर्यरश्मयः सूर्याश्वा वा (जातवेदसम्) अग्नितेजोमयं यद्वा जातं वेदः कर्मफलं यस्मात् (त्यम्) प्रसिद्धं तम् (सूर्य्यं देवम्) द्योतमानं सूर्यम् (विश्वाय) विश्वस्य (दृशे) दर्शनाय (उद्वहन्ति) ऊर्ध्वं वहन्ति ॥२॥

भावार्थ-ब्रह्मज्योति इस जातवेदस सूर्य देवताको सब संसारकी दर्शन क्रिया संपादन करनेके निमित्त ऊर्ध्वभागमें निरन्तर वहन करती है। अथवा उदयको प्राप्त हुए अग्निके समान समस्त प्राणियोंका कार्य करनेवाले संसारके सब पदार्थोंके दर्शनके निमित्त जिसने सूर्यको प्रकाशित किया है उस परमात्माकी विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं ॥२॥

मन्त्रः

येनांपावकचक्षंसाभुरण्यन्तञ्जनाँ॥ २ ॥ ऽअनुत्वँव्वं-रुणपश्यंसि ॥ ३ ॥

ॐ येनेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गायत्री छन्दः सूर्यो । देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्-(पावक) हे शोधक (वरुण) अनिष्टनिवारक सूर्य्य (त्वम्) त्वम् (येन) येन (चक्षसा) दर्शनेन (जनान् प्राणिनः (भुरण्यन्तम्) धारयन्तं पोषयन्तं वेमं लोकं येन चक्षसा प्रकाशेन (अनुपश्यसि) अनुक्रमेण प्रकाशयति तेन ज्ञानेन अस्मानपि भुरण्यतः पश्येत्यर्थः ॥ (जयु० ३३।३२) ॥३॥

भावार्थ—हे पावक । अर्थात् सबके शुद्ध करनेवाले वरुणदेव ! इस सब ब्रह्माण्ड को अपनी ज्योतिसे आच्छादन करके स्थित हुए तुम जिस सूर्यरूप ज्योतिसे वा अनुग्रहरूप दृष्टि से उस सुपर्ण रूपको देखते हो अर्थात् सर्वमेधयाजिको पक्षीके समान शीघ्रतासे स्वर्गमें गमन करते देखते हो उसी दृष्टिसे हम अपने जनोंको भी सब प्रकारसे देखिये ॥३॥

मन्त्रः

दैव्यांवद्ध्वर्यूऽआगंतुठंरथेनसूर्य्यत्वचा ॥ मध्वां यज्ञठंसमंञ्जाथे॥ तम्प्रत्क्नथायंव्वेनश्चित्रन्देवानांम्॥४॥

ॐ दैव्यावित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गायत्री छन्दः । दैव्यावध्वर्यू देवते । वि० पू० ॥ ४ ॥

भाष्यम्--(दैव्यौ) देवनामिमौ दैव्यौ (अध्वर्यू) हे अश्विनौ युवाम् (सूर्यत्वचा-) सूर्यदीप्तिमता (रथेन) रथेन (आगतम्) आगच्छतमद एत्यच (मध्वा) मधुस्वादवता-हविषा सोमपुरोडाशदध्यादिना (यज्ञम्) अस्मद्यज्ञम् (समञ्जाथे) संरक्षयतम्, बहूनि हवींषि कुरुत। "तम्प्रत्क्नथा ७।१२। अयम्वेनः ७। १६ चित्रन्देवानाम् ७। ४३ तिस्त्रः प्रती-कोक्ताः" (यजु० ३३।३३) ॥४॥

भावार्थ—हे दिव्य अश्विनीकुमार आप सूर्यके समान कान्तिमान् रथके द्वारा आइये मधुर हवि सोमपुरोडाश दधि आदिद्वारा यज्ञको सींचकर बहुत हविवाला करो। दूसरे पक्षमें सूर्य कान्तिरूप रथमें आरूढ़ हुए, यह दिन रात्रिरूप अध्वर्यू अग्निष्टोमादि यज्ञके और सृष्टिरूप महायज्ञके संपादक हैं ॥४॥

मन्त्रः

तम्प्रत्क्कथांपूर्व्वथांव्विश्श्वथेमथांज्ज्येष्ठतांतिम्बर्हिषदंᳬ स्वर्व्विदम् । प्प्रतीचीनँव्वृजनन्दोहसेधुनिमाशुञ्जयन्तमनुयासुवर्द्धसे ॥ ५ ॥

ॐ तम्प्रत्क्कथा इत्यस्य अवत्सार ऋषिः । निच्यृदार्षी जगती छन्दः । विश्वेदेवा देवता । शुक्रग्रहणे विनियोगः ॥५॥

भाष्यम्–(प्रत्नथाः) पुरातना यजमाना इव (पूर्वथाः) अस्मदीयाः पूर्वे यथा (विश्वथा) विश्वे सर्वे प्राणिनो यथा (इमथा) इदानीं वर्तमाना यजमाना यथेन्द्रस्य स्तुत्या फलं लभन्ते हे अन्तरात्मन् (ज्येष्ठतातिम्) उत्कृष्टविस्तारमथवा प्रशस्यम् (बर्हिषदम्) बर्हिषि तिष्ठन्तम् (स्वर्विदम्) सर्वज्ञं सर्वस्य लंभयितारं फलं भावयितारं (प्रतीचीनम्) आत्मनोऽभिमुखम् (वृजनम्) बलवन्तम् (आशुम्) शीघ्रगामिनम् (जयन्तम्) सर्वमभिभवन्तम् (धुनिम्) कम्पयितारं शत्रूणामिति शेषः । इन्द्रं स्तुत्या साधनेन (दोहसे) पूरयसि (वायु) स्तुतिषु (वर्द्धसे) प्रवृद्धो भवसि वर्द्धयसि वेन्द्रं यथा स्तुत्येति यास्विति व्यत्ययेन वचनम् । यजु० ७।१२) ।।५।।

भावार्थ—हे इन्द्र ! जो कि तुम, हमसे प्रतिकूल गमन करनेवाले आलस्य अश्रद्धा आदिको हमसे रिक्त अर्थात् विनाश करते हो जिन क्रियाओंमें आपले अनुग्रहसे शत्रुओंको कम्पित करते, शीघ्रकारी सम्यक् अनुष्ठानसे और यजमानोंसे अधिक इस यजमानके पीछे सोमपान और स्तुतिसे जो तुम वृद्धिको प्राप्त होते हो उन क्रियाओंमें सर्वश्रेष्ठ उस तुमको हम स्तुति करते हैं। जैसे पुरातन भृगू आदिने, पूर्व पितर आदिने, अतीत यजमानोंने, इस समयके यजमानोंने तुम्हारी स्तुति की है उसी प्रकार हम करते हैं । जो कि तुम सर्व श्रेष्ठ यज्ञके सन्निधानमें स्थित यजनानके देने योग्य स्वर्गको जानते हो ।।५।।

मन्त्रः

अयँव्वेनश्श्चोदयत्पृश्श्निगर्ब्भाज्ज्योतिर्ज्जरायूरजसोव्विमाने ॥ इममपाᳬसंगमेसूर्य्यस्यशिशुन्नव्विप्प्रामतिभीरिहन्ति ॥ ६ ॥

ॐ अयम्वेन इत्यस्यावत्सारः कश्यप ऋषिः । निचृदार्षी त्रिष्टुप्० । सोमो दे० । मन्थीग्रहणे वि० ॥ ६ ॥

भाष्यम्–(ज्योतिर्जरायुः) ज्योतिर्विद्युल्लक्षणं जरायुः वेष्टनं यस्य सः । (अयम्) (वेनः) कान्तश्चन्द्रः (रजसः) उदकस्य (विमाने) निर्माणकाले ग्रीष्मान्ते प्राप्ते (पृश्निगर्भाः) अपः (चोदयत्) प्रेरयति पृश्निर्द्युलोक आदित्यो वा गर्भोऽवस्थानं यासां ताः द्युलोकस्था रविस्था वा अपो वर्षति (विप्राः) विद्वांसो ब्राह्मणाः (इमम्) (सोमम्) सोमम् (अपाम्) (सूर्यस्य देवस्य (संगमे) संगमेसति (शिशुं न) बालमिव (मतिभिः) मतिपूर्वाभिर्वाग्भिः (रिहन्ति) स्तुवन्ति । "आपो अपां सूर्यस्य च संगमे गृह्यन्ते ता वै वहन्तीनां स्यन्दमानानां दिवा गृह्णीयात्" इति श्रुतेः । (यजु० ७।१६) ॥६॥

भावार्थ—यह अनुपम कांतिमान् चन्द्रदेवता जलवर्षण करनेके निमित्त उद्यत होकर पृश्निगर्भ (पृश्निशब्दसे सूर्य्य और द्युलोक लेने) पृथिवीके समस्त रस सूर्य्यकी किरणोंसे खींचकर द्युलोकमें मेघरूपसे बढ़ते हुए काल पायकर वर्षते हैं। अतएव इस स्थानमें इस मेघरूप गर्भके पिता सूर्य्य और माता द्युलोक हैं और ज्योतिर्जरायु (ज्योति बिजली, सो यह पर जरायु–गर्भवेष्टन है) वृष्टिको प्रेरण करते हैं, विद्वान् लोग जल संगमके विषयमें इनको सूर्य्यका प्रियपुत्र समझकर स्तुति किया करते हैं ॥६॥

मन्त्रः

चित्रन्देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्म्मित्रस्य्वरुणस्याग्नेः ॥ आप्राद्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳसूर्य्यऽआत्माजगतस्तस्थुषश्च ॥ ७ ॥

ॐ चित्रमित्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । सूर्यो देवता । शालाद्वार्येऽग्नौ हवने विनियोगः ॥ ७ ॥

भाष्यम्–(देवानाम्) दीव्यन्तीति देवा रश्मयस्तेषां देवजनानामेव वा (अनीकम्) तेजः समूहरूपम् (चित्रम्) आश्चर्यकरम् (मित्रस्य) वरुणस्य (अग्नेः) त्रयाणां देवानाम (चक्षुः) उपलक्षितानां जगतां चक्षुः असौ सूर्यः (उदगात्) उदितो बभूव उदयं प्राप्य च (द्यावापृथिवी) दिवं पृथिवीम् (अंतरिक्षम्) आकाशम् (आप्राः) स्वकीयेन तेजसा आ समन्तावापूरितवान् । ईदृग्भूतमण्डालान्तर्वर्ती (सूर्यः) सूर्यदेवोऽन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकः परमात्मा (जगतः) जंगमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य (आत्मा) स्वरूपभूतः सकलसंसारमयोऽयमेव सूर्य इत्यर्थः ॥ (यजु० ७।४२) ॥८॥

भावार्थ—अहो ! क्या आश्चर्य है, यह किरण पुंज देवता प्रतिदिन ही उदित होते हैं, भूलोकसे द्युलोकतक तीनों लोकोंमें अपनी किरणोंका जाल विस्तार करके समस्त संसार के नेत्ररूप होकर प्रकाशमान हो रहे हैं, यह स्थावर जंगम समस्त पदार्थोंको जीवन और सूर्य्यनामसे प्रसिद्ध हैं, इन देवताके निमित्त दिया हुआ यह हवि सुन्दर प्रकारसे ग्रहण किया जाय ।।७।।

मन्त्रः

आनऽइडाभिर्व्विदथेसुशस्तिविश्श्वानरः सविताद्वेवऽएंतु ॥ अपियथांयुवानोमत्सथानोव्विश्श्वञ्जगंदभिपित्वेमंनीषा ॥ ८ ॥

ॐ आन इडाभिरित्यस्यागस्त्य ऋषिः । त्रिष्टुप् छं० । सविता देवताः । वि० पू० ॥ ८ ॥

भाष्यम्–(विश्वानरः) विश्ववर्तिनो जनान् स्वत एच रक्षकः (सविता) (देवः प्रेरको देवः (नः) अस्माकम् (विदथे) यज्ञे (सुशस्तिभि) शोभनसंसनहेतुभूतैः (इडाभिः यज्ञकारणभूताभिः इडाभक्षणेन सुशस्ति शोभना शस्ति प्रशंसा यस्यां क्रियायां तथा यथा सर्वे इडां भक्षयन्ति तथा (आ एतु) आगच्छतु । सूर्यमुक्त्वा देवानाह(युवानः) हे जरारहिता देवाः (अपि) निश्चितम् (अभिपित्वे) आगमनकाले (यथा) येन प्रकारेण (मतसथ) यूयं तृप्यथ तथा (नः)अस्माकम् (विश्वम्) सर्वम् (जगत्) पुत्रगवादिकम् (मनीषा) मनीषया बुद्ध्या तर्पयथ । यथा भवद्भिस्तृप्तिः क्रियते तथास्मत्प्रजास्तर्पणीया इत्यर्थः (यजु० ३३।३४) ।।८।।

भावार्थ—सब प्राणियोंका हितकारी सबका प्रेरक देव हमारे सुन्दर अन्नोंद्वार प्रशंसा युक्त यज्ञगृह में आगमन करें । अर्थात् अन्नोंसे सुन्दर प्रशंसा संपन्न यज्ञ गृहमें आगमन करें । हे देवताओ जरारहित तुम आगमन कालमें जिस प्रकारसे हो वैसे तृप्त होकर हमारे संपूर्ण जंगल पुत्र गो आदिको बुद्धिपूर्वक सब प्रकार तृप्त करो ।।८।।

विशेष–अथवा विश्वके हितकारी सविता देवता, प्रतिदिन अपने नियमसे उदित होकर इस सृष्टियज्ञमें अन्न उत्पन्नकी प्रशंसा लाभ करते हैं । उस अन्नसे हम देवताओंको तृप्त करते हैं, वे हमारे परिवारको तृप्त करें ।।८।।

मन्त्रः

यदुद्यकच्चंवृत्रहन्नुदगांऽअभिसूर्य्य ॥ सर्व्वन्तदिन्द्रतेव्वशे ॥ ९ ॥

ॐ यदद्येत्यस्य श्रुतकक्षसुकक्षौ ऋषी । गायत्री छन्दः । सूर्यो देवता ॥ ९ ॥

भाष्यम्–(वृत्रहन्) वृत्रस्यामावरकस्य मेघस्य हन्तः (सूर्य) हे सूर्यात्मकेन्द्र (अद्य) अस्मिन्दिने (यत् कच्च) यत्किञ्चित्पदार्थजातम् (अभि) अभिमुखीकृत्य (उदगाः) प्रादुर्भूतोसि (इन्द्र) हे ऐश्वर्यसंपन्न (तत्सर्वम्) स्थावरजंगमात्मकं जगत् (ते) तव (वशे) त्वदधीनं भवति। उदिते सूर्ये त्वदधीनं प्राक्कर्म कुर्वन्ति जुह्वति च । (यजु० ३३।३५) ॥९॥

भाषार्थ—हे अंधकारके नाशक । हे ऐश्वर्युक्त सूर्यदेव । आज जो कहीं किसी प्रदेशमें उदय होते हो वह सब तुम्हारे वशमें हैं अर्थात् जो लोक सूर्य्यके प्रकाशसे प्रकाशित हैं उनकी स्थिति सूर्यकें ही आधीन है ॥९॥

मन्त्रः

तरणिर्व्विश्वदर्शतोज्ज्योतिष्कृदसिसूर्य्य ॥ विश्वमाभासिरोचनम् ॥ १० ॥

ॐ तरणिरित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । गायत्री छन्दः सूर्यो देवता । वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्–(सूर्य) हे सूर्य त्वम् (तरणिः) तरिता अन्येन गन्तुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गन्तासि तथा च स्मर्यते–"योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वेच योजने । एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते ।" यद्वा उपासकान् रोगात्तारयसि (विश्वदर्शतः) विश्वसर्वैः प्राणिभिर्दर्शनीय–। यद्वा-विश्वं सकलभूतजातं दर्शतः द्रष्टव्यं प्रकाश्यं येन सः तथोक्तः (ज्योतिष्कृत्) प्रकाशस्य कर्ता । यद्वा-चन्द्रादीनां रात्रौ प्रकाशयिता (असि) असि (विश्वम्) व्याप्तम् (रोचनम्) रोचमानमन्तरिक्षमासमन्तात् (भासि) प्रकाशयसि । यद्वा– हे सूर्य अन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरक परमात्मन् त्वम् तरणिः संसाराब्धेः तारकोसि यस्मात्वं 'विश्ववर्शनः' विश्वैः सर्वैर्मुमुक्षुभिर्दर्शितः द्रष्टव्यः साक्षात्कर्तव्य इत्यर्थः। 'ज्योतिष्कृत्-

सूर्यादिः कर्त्ता ईदृशस्त्वं चिद्रूपतया 'विश्वं ' सर्वं दृश्यजातं 'रोचनं' दीप्यमानं यथा भवति तथा (आभासि) प्रकाशयसि चैतन्यस्फुरणे हि सर्वं जगद्दृश्यते ।" तमेव भान्तमनु भाति सर्वम् "इत्यादि श्रुतेः (यजु० ३३।३६) ॥१०॥

भाषार्थ—हे सूर्यदेव ! आप महामार्गमें गमन करनेवाले, अथवा उपासकोंके रोग दूर करनेवाले सब प्राणियोंके दर्शनयोग्य, अथवा-दृश्यवर्गके प्रकाशक हो । अथवा—चन्द्रादिकमें भी आपहीका प्रकाश है, आपही उनके प्रकाशक हैं, आपही दीप्यमान अन्तरिक्षका प्रकाश करते हो । अथवा— अन्तर्यामी रूपसे प्ररक हे परमात्मन् । संसारसागरसे आपही पार लगानेवाले हैं । इस कारण संपूर्ण मुमुक्षु जनों से आपही देखनेयोग्य हैं । इससे आपही साक्षात् करनेके योग्य हैं ॥१०॥

मन्त्रः

तत्सूर्य्यस्यदेवत्वन्तन्महित्वम्मद्ध्याकर्त्तोर्व्विततर्ठ्ठ सञ्जभार ॥ यदेदयुंक्तहरितः सधस्थादाद्रात्रीव्वासस्तनुतेसिमस्म्मै ॥ ११ ॥

ॐ तत्सूर्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । सूर्यो वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्–(सूर्यस्य) सर्वप्रेरकस्य आदित्यस्य (तत्) देवत्वम् ईश्वरत्वम् (महित्वम्) महत्त्वम् माहात्म्यञ्च यत् (कर्तोः) कर्मणोः (मध्या) मध्ये (विततम्) विस्तीर्णं स्वकीयं रश्मिजालम् (सञ्जभार) अस्तं गच्छन्नस्माल्लोकात्स्वात्मनि उपसंहरति (यदा) यस्मिन्नेव काले (हरितः) रसहरणशीलान् स्वरश्मीन् हरिद्वर्णानश्वान्वा (सधस्थात्) सहस्थानादस्मात्पार्थिवाल्लोकादादाय (ईत्) एव (अयुक्त) अन्यत्र संयुक्तान् करोति। यद्वा-यदा असौ स्वरश्मीनश्वान् 'सधस्थात्' सह तिष्ठत्यस्मिन्निति सधस्थो रथस्तस्मादयुक्त अमुञ्चत् (आत्) अनन्तरमेव (रात्रि) निशा (वासः) आच्छादयितृतमः (सिमस्मै) सर्वस्मै (तनुते) विस्तारयति ।एवमेक आदित्यसहितं ज्योतिरन्यत्र तमः आदित्यप्रभावाद्वसतीत्यभिप्रायः '(यजु० ३३।३७) ॥११॥

भाषार्थ—सूर्यका वही देवत्व है वही महत्त्व है, कि जो ईश्वरके कार्य श्रेष्ठ जगत्के मध्यमें स्थित होकर विस्तीर्ण किये ग्रह मंडलको अपनी किरणों द्वारा अथवा अपने आकर्षणसे निज कक्षोंमें नियमित रखते हैं, जबही हरितवर्णकी रश्मियोंसे युक्त आकाश मंडलसे अपनेमें युक्त करते हैं, अर्थात् जब यह संध्याकालमें किरणोंको आकाशसे अपनेमें युक्त करते हैं तब रात सबके निमित्त वस्त्रको विस्तार करती है । अर्थात्—अन्धकारसे आच्छा-

दन करती है, अथवा–जिस समय यह रथारोहण कर गमन करते हैं, रात्रि अपने सीमान्तमें वस्त्राच्छादन करती है । अर्थात्– रात्रिरूपी अन्धकार दिशाओंके मध्यमें गमन करता है ।।११।।

मन्त्रः

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ॥ अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ १२ ॥

ॐ तन्मित्रस्येत्यस्य विनियोगः पूर्ववत् ॥ १२ ॥

भाष्यम्–(सूर्यः) आदित्यः (द्योः) द्युलोकस्य (उपस्थे) सङ्गमे (मित्रस्य) मित्रः देवस्य (वरुणस्य) वरुणदेवस्य (तत्) (रूपम्) (कृणुते) कुरुते येन रूपेण जनान् (अभिचक्षे) अभिचष्टे पश्यति मित्ररूपेण सुकृतिनोऽनुगृह्णाति, वरुणरूपेण दुष्कृतिनो निगृह्णातीत्यर्थः। (अस्य) सूर्यस्य (अन्यत्) एकम् (पाजः) रूपम् (अनन्तम्) कालतो देशतस्तथा परिच्छेद्यम् (रुशत्) शुक्लं दीप्यमानं जरामरणाद्ययुक्तं विज्ञानघनानन्दमयमित्यर्थः । (अन्यत्) (कृष्णम्) द्वैतलक्षणं रूपम् (हरितः) दिश इन्द्रियवृत्तयो वा (सम्भरन्ति) धारयन्ति । इन्द्रियग्राह्यं द्वैतरूपमेकं शुद्धं चैतन्यमद्वैतमिति द्वे रूपे सूर्यस्य सगुणं निर्गुणं ब्रह्म सूर्य एवेत्यर्थः (यजु० ३३।३८) ।।१२।।

भावार्थ—सूर्य द्युलोककी गोदीमें मित्र और अरुणका वह रूप करता है जिससे मनुष्योंको देखता है अर्थात्-मित्ररूपसे पुण्यात्माओंपर अनुग्रह करता, वरुण रूपसे पापियोंको निग्रह करता है, इस सूर्यका, एक रूप देशकालसे अपरिच्छेद्य शुक्ल दीप्यमान विज्ञान घनानन्द ब्रह्महो है । एक कृष्णवर्ण द्वैतलक्षणवाला रूप है उसको दिशा वा इन्द्रियवृत्ति धारण करती हैं । अर्थात् इन्द्रियग्राह्य द्वैतरूप है। एक शुद्धचैतन्य है इस कारण ब्रह्मके सगुण निर्गुण दो रूप कहे हैं ।।१२।।

विशेष–अद्वैतरूप मित्र अर्थात् उत्तरायण दिन है इसमें पुण्यात्मा गमन करते हैं, कृष्ण दक्षिणायन रात्रि है, इसमें पापियोंको वरुण रूपसे निग्रह करता है ।।१२।।

मन्त्रः

बण्महाँ ॥ २ ॥ ऽअसि सूर्य्य बडादित्य महाँ २ ॥ ऽअसि ॥ महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महाँ २ ॥ ऽअसि ॥ १३ ॥

ॐ बण्महानित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । बृहती छन्द । सूर्यो देवता वि० पू० ॥ १३ ॥

भाष्यम् –(सूर्य) हे सूर्य त्वं (बट्) सत्यम् (महान) तेजसाधिकः (असि) महदसि ब्रह्मेत्यर्थः । (आदित्य हे आदित्य (बट्) सत्यम् (महान् असि) बलेनाप्यधिकोसि । किञ्च– (महः) महतः (सतः) (ते) तव (महिमा) महाभाग्यम् (पनस्यते) सर्वं प्राणिभिः स्तूयते पूज्यते वा, अतः (देव) हे देव दानक्रीडादियुक्त (अद्धा) तत्त्वतः (महान असि) वीर्येणाऽप्यधिकोऽसि अभ्यासे भूयांसमर्थमन्यत् यथा दर्शनीयोऽर्थनीयो न पुनरुक्तिदोषः । (यजु ३३।३९) ।।१३।।

भावार्थ—हे जगत्को अपने अपने कार्यमें प्रुरण करनेवाले सूर्यरूप परमात्मन् । सत्य ही आप सबसे अधिक हो, हे आदित्य । सबके ग्रहण करनेवाले सत्यही आप बड़े हो, बड़े होनेसे आपकी महिमा लोगोंसे स्तुति की जाती है, हे दीप्यमान परमात्मन् । सत्यही तुम सबसे श्रेष्ठ हो, आदरके निमित्त पुनरुक्ति है ।।१३।।

मन्त्रः

बट्सूर्य्यश्श्रवंसामहाँ ॥ २ ॥ ऽअंसिसत्त्रादेवमहाँ २ ॥ अंसि ॥ मुह्नादेवानांमसुर्य्यः पुरोहितोविभुज्ज्योतिरदांब्भ्यम् ॥ १४ ॥

ॐ बट्सूर्य्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । सतोबृहती छन्दः । सूर्यो दे० । वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्–(सूर्य) हे सूर्य (बट्) सत्यम् (श्रवसा) श्रवणीयेन बलेन (महान्असि) सर्वाधिकोसि (देव) हे द्योतमान् (सत्रा) सत्यम् (महानसि) अधिकोऽसि किञ्च-(महा) स्वकीयमहत्त्वेन (देवानाम्) सुराणां मध्ये (असुर्य्यः) असुराणां हन्ता । यद्वा-असुरस्यास्तीति असुरः प्राणस्तस्मैः हितः प्राणिनां हित इत्यर्थः । (पुरोहितः) प्रथमपूज्यः (विभुः) व्यापकःते (ज्योतिः) तेजः (अदाभ्यम्) केनाप्यहिंस्यम् ।यद्वा-अनुपहिंस्यज्ज्योतिः विज्ञानघनानन्दमयमित्यर्थः (यजु० ३३।४०) ।।१४।।

भावार्थ—हे सूर्य । आप सत्यही धन वा यशसे वा अन्नके प्रकट करनेसे श्रेष्ठ हो, हे दीप्यमान प्राणियोंके हितकारी देवताओंके मध्यमें अग्रस्थापित अर्थात् सब कार्योंमें प्रथम-

पूज्य अर्थात्-प्रथम तुमको अर्घदान करनेपर पीछे दूसरे देवताओंकी पूजामें अधिकार है, व्यापक उपमाररहित किसीसे न रुकनेवाले तेजसे युक्त आप यज्ञद्वारा महत्वसे अधिक श्रेष्ठ हो, अर्थात्-तुम माहात्म्यके प्रभावसे एककारमें सर्व देवव्यापी प्रतिद्वन्द्वीशून्य ज्योति विस्तार करते प्राणिमात्रके हितकारी स्वरूपसे सबके आगे पूजनीय हो ।।१४।।

मन्त्रः

श्रायन्तऽइवसूर्य्यँविश्श्वेदिन्द्रस्यभक्षत ।। व्वसूनिजा-तेजनमानऽओजसाप्प्रतिभागन्नदीधिम ।। १५ ।।

ॐ श्रायन्त इत्यस्य नृमेध ऋषिः । बृहती छन्दः । सूर्यो देवता । वि० पू० ।। १५ ।।

भाष्यम्–हे अस्मदीया जनाः यथा सूर्यरश्मयः (सूर्य्यम्) सूर्य्यम् (श्रायन्त इव) समाश्रिताः सूर्य भजन्ते तथा (इन्द्रस्य) इन्द्रसम्बन्धीनि, इन्द्रानुज्ञातानि (विश्वेत्) विश्वानि धनानि (भक्षत) भक्षत (वसूनि) धनानि पुत्रपौत्रप्रपौत्रादौ (जनमाने) जनिष्यमाणे भविष्यत्काले (ओजसा) बलेन ज्ञानसमुच्चयकारितया (प्रतिभागम्) (न) नकार उपमार्थोयः प्रतिपुरुषं भागमिव (दीधिमः) स्थापयामः। इन्द्रः यानि वसूनि बलेन जनिष्यमाणानि करोति पित्र्यम्भागमिव तानि धनानि प्रतिधारयेमेत्यर्थः (यजु० ३३।४१) ।।१५।।

भावार्थ—सूर्यको आश्रय करती हुई किरणें ही इन्द्र के संपूर्णधन अर्थात्-वृष्टि धान्य निष्पादक संपत्तिको सेवन करती भक्षण करती है, अर्थात् विभाग करके प्राणियोंको देती है । आशय यह कि, सूर्यकी किरणें इन्द्रकी दी हुई वृष्टिको भूमिमें विभाग करती हैं । और हम उन धनोंको पुत्रादिके उत्पन्न होनेमें अपने भागके समान तेजके सहित धारण वा स्थापन करते हैं ।।१५।।

सरलार्थ–हम सूर्यको आश्रय करके जिससे विश्वाधिपति परम पिताके विषय भोगमें समर्थ होते हैं, उनके उत्सृष्ट वा उत्सृज्यमान संपूर्ण संपत्तिमें भी मनके बलपूर्वक अपने अपने प्राप्तभागमें अधिकार किये हैं, अर्थात्-सूर्यकी सहायतासे ही सब कार्यकी प्रवृत्ति होती है । आशय यह कि भूमिअधिकारी के भाग्यके अनुसार न्यूनाधिक वर्णन करते हैं ।।१५।।

मन्त्रः

अद्द्यादेवाऽउदितासूर्य्यस्यनिरँहसःपिपृतानिरव

द्यात् ॥ तन्नोमित्रोवरुणोमामहन्तामदितिःसिन्धुः पृथिवीऽउतद्यौः ॥ १६ ॥

ॐ अद्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । देवा देवता दध्यादित्यग्रहश्रवणे विनियोगः ॥ १६ ॥

भाष्यम्-(देवाः) हे द्योतमानाः सूर्य्यरश्मयः (अद्य) अस्मिन्काले (सूर्यस्य) आदित्यस्य (उदिता) उदयकालीनाः उदये सति इतस्ततः प्रसरन्तो यूयमस्मात् (अंहसः) पापात् (निष्पिपृतः) निर्मुञ्चत (अवद्यात्) दुर्यशसोऽपि निर्मुञ्चत । यदिदमस्माभिरुक्तम् (नः) अस्मदीयम् (तत्) (मित्रः) अहरभिमानी देवः (वरुणः अनिष्टानां निवारयिता रात्र्यभिमानी (अदितिः) अखण्डनीया देवमाता (सिन्धुः) स्यन्दनशीलोदकाभिमानी देवता (पृथिवी) भूलोकस्याधिष्ठात्री (द्यौः) द्युलोकाभिमानी (उत) समुच्चये (मा) माम् (महन्ताम्) पूजयन्तु अनुमन्यतामिति (यजु० ३३।४२) ॥१६॥

भावार्थ-हे रश्मियोंमें स्थित देवताओ। आज अब सूर्यका उदय हमको पापसे तथा दुर्यशसे पृथक करे, मित्र, वरुणदेवता देवमाता, सिन्धुनदी, पृथिवी और स्वर्ग इस हमारे वचनको अनुमोदन करे ॥१६॥

मन्त्रः

आकृष्णेनरजसावर्त्तमानोनिवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च ॥ हिरण्ययेनसवितारथेनादेवोयातिभुवनानिपश्यन्॥ १७॥

इति सꣳहितायांरुद्रपाठेचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ॐ आकृष्णेन इत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । त्रिष्टुप् छन्दः । सविता देवता । सावित्रग्रहग्रहणे वि० ॥ १७ ॥

भाष्यम्-(सविता) देवानां प्रसविता (देवः) स्तुतिदीप्तिक्रीडायुक्तः (कृष्णेन) कृष्णवर्णेन (रजसा) लोकेन लोकार रजांस्युच्यन्ते अन्तरिक्षलोको हि सूर्यागमनात्पुरः कृष्णवर्णो भवति तेनान्तरिक्षमार्गेण (आवर्तमानः) पुनः पुनरागच्छन् (अमृतम्) देवम्

(मर्त्यम्) मनुष्यम् (च) (निवेशयम्)स्वस्वव्यापारे स्थापयम् । यद्वा—'अमृतम्' मरणास्यहितं प्राणं मर्त्यम्' मरणसहितं शरीरं च 'निवेशयन्' स्थापयन् (भुवनानि) सर्वान् लोकान् (अपश्यन्) अवेक्षमाणः प्रकाशयन्नित्यर्थः । (हिरण्येन) सुवर्णनिर्मितेन (रथेन) यानेन (आयाति) अस्मत्समीपमागच्छति । भुवनवर्तिलोकान् पुण्याकर्तॄन् क्षिप्रन्निरीक्षमाणः यः सविता देवः देवमनुष्यव्यापारस्थापकः यश्च पुण्यपापसाक्षी तस्यार्चादिकमुचितमिति वाक्य(यजु० ३३।४३) ।।१७।।

भावार्थ—सवके प्रेरण करनेवाले सविता देवता सुवर्णमय रथमें आरूढ होकर कृष्णवर्ण रात्रि लक्षणवाले अन्तरिक्ष मार्गमें पुनरावर्तन क्रमसे भ्रमण करते देवादि और मनुष्यादिको अपने अपने व्यापारमें स्थापन करते संपूर्ण भुवनोंको देखते हुए आगमन करते हैं । अथवा सब लोकोंको प्रकाश करते आगमन करते हैं । आशय यह कि—भुवनवर्ती लोकोंके पुण्य पापको शीघ्रतासे निरीक्षण करते हुए पुण्यपापके साक्षी यह सविता देवता है इनकी उपासना पूजा उचित है ।।१७।।

इति श्रीरुद्राष्टके मुरादावादनिवासी— पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्यभाषाभाष्यसमन्वितश्चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मन्त्रः

ॐ नमस्तेरुद्रमुन्यवंऽउतोतऽइषवेनमः ॥ बाहुभ्यामुततेनमः ॥ १ ॥

ॐ नमस्त इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । गायत्री छन्दः । रुद्रो दे० । पाठे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्—हे रुद्र ! यद्रोदनं रु दुःखं द्रावयति रुद्रः । यद्वा— रुद्रमुपशान्तयति, ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः रवणं रुत् ज्ञानं भावे क्विप् तुगागमः। रुत् ज्ञानं राति ददातीति रुद्रः मोहनिवारकः परमेश्वरः । यद्वा—पापिनो जनान् दुःखभोगेन दयतीति रोद्रः जगच्छासकः। हे रुद्र (ते) तव (मन्यवे) रोषाय (नमः) नमस्कारोऽस्तु (उत) अपि (ते) तव (इषवे) शराय (नमः) नमस्कारोऽस्तु, (उत) अपि च (ते) तव बाहुभ्याम् भुजाभ्याम् (नमः)

नमः तव क्रोधवाणहस्ता अस्मच्छत्रुष्वेव पतन्तु नास्मास्वित्यर्थः। (यजुर्वेदीयषोडशोऽध्यायः) ।।१।।

भाषार्थ—हे दुःखके दूर करकरने अथवा ज्ञानके देनेवाले अथवा पापीजनोंको उनका कर्मफल देकर रुलानेवाले रुद्रदेव। आपके क्रोधके निमित्त नमस्कार है। और तुम्हारे बाणोंके निमित्त नमस्कार है। और तुम्हारी दोनों भुजाओंके निमित्त नमस्कार है, अर्थात् हे रुद्र देव। आपका क्रोध और बाणधारी हस्त शत्रुओंपर पड़े हमको शान्ति हो ।।१।।

विशेषतत्त्ववादी मेघोंके अन्तर शक्तिमय रुद्रका निवास कहते हैं। कि गर्जना उनका क्रोध है। उल्का पात बाण हैं, समुद्रमें उठे तरंग एक भुजा, और महाधारा वर्षा उनकी दूसरी भुजा–रूप हैं। उससे शत्रुओंका अनिष्ट हो, और हमको मंगल हो। अथवा–पापियोंके नाशको तुम बाण और क्रोधरूप हो इस अध्यायमें परमेश्वरका सगुणनिर्गुणरूप उग्रदेवोपासनासे वर्णन किया है ।।१।।

मन्त्रः

यातेरुद्रशिवातनूरघोरापापकाशिनी ॥ तयानस्तन्वाशन्तमयागिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥ २ ॥

ॐ यात इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। आर्षी स्वराडनुष्टुप्छन्दः। रुद्रो दे०। विं० पू० ॥ २ ॥

भाष्यम्–(रुद्र) हे देव (या) (ते) तव (अघोरा) सौम्या (अपापकाशिनी पापमसुखंकाशयति प्रकाशयति पापकाशिनी न पापकाशिनी या भक्तानाम् पुण्यफलमेव ददाति न पापफलमित्यर्थः। (शिव) शान्ता मङ्गलरूपा (तनूः) शरीरमस्ति (गिरिशन्तः) कैलासवासी गिरौ कैलासे स्थितः प्राणिनाशं सुखं विस्तारयति वा गिरि वाचि स्थितः शं तनोतिवा गिरौ मेघे स्थितो वृष्टिद्वारेण शं तनोति वा गिरौ शेते गिरिशः। अमति गच्छति जानातीति वा अन्तः सर्वज्ञः, अमगतौ भजने शब्दे कर्तरि क्तः (गिरिशश्चासावन्तश्च गिरिशन्तस्तत्सम्बुद्धिः शकन्ध्वादित्वात्पररूपम्। (तया) (शन्तमया) सुखतमया (तन्वा) शरीरेण (नः) अस्मान् (अभिचाकशीहि) अभिपश्य ।।२।।

भाषार्थ—कैलासपर्वतपर स्थित होकर प्राणियोंके सुखको विस्तार करनेवाले अथवा वाणीमें स्थित होकर सुखका विस्तार करनेवाला अथवा मेघमें स्थित होकर वर्षा आदिके रूपसे सुखको विस्तार करनेवाले, वा पर्वतपर शयन करने वाले सर्वज्ञ, हे रुद्र। जो तुम्हारा शान्त मंगलरूप विषमतारहित–होनेसे सौम्य पापफलको न देकर पुण्यकारका ही देनेवाला शरीरसे हमको अवलोकन कीजिये ।।२।।

विशेष–जो सर्वव्यापी आत्माका भी आत्मा है दृश्यअदृश्य संपूर्ण शरीरोंमें उसकी स्थिति है केवल तत्त्व विचारवाले कहते हैं कि इस स्थलमें रुद्रका मेघोदयरूप शरीर देखने-की प्रार्थना है, किन्तु जिससे गृहपतन और बाढ़की प्राप्ति हो उसके उदयकी प्रार्थना नहीं है किन्तु जिसके उदयसे कृषि आदिकी उन्नति हो उसकी प्रार्थना है। यहां रुद्रका कल्याण मय शरीर और कैलास होनेसे शिवका विग्रह भी कथन किया है; अथवा हे रुद्र। आपका कल्याणकारी विस्तार मनोहर है; पापोंको दूर करके हमको महासुख दो। इससे सगुण ब्रह्म प्रतिपादित है ।।२।।

मन्त्रः

यामिषुंङ्गिरिशन्तुहस्तेंबिभर्ष्यस्तवेशिवाङ्गिरित्रता-ङ्कुरुमाहिँठंसीःपुरुषञ्जगंत् ॥ ३ ॥

ॐ यामिषुमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। विराडार्ष्यनुष्टुप् छं०। रुद्रो देवता। वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्–(गिरिशन्त) देव (याम्) (इषुम्) शरम् (अस्तवे) शत्रून् क्षेप्तुं (हस्ते) करे (बिभर्षि) धारयसि (गिरित्र) गिरौ कैलासे स्थित्वा भूतानि त्रायते इति तत्सम्बुद्धिः (ताम्) बाणम् (शिवाम्) कल्याणकारिणीं (कुरु) किञ्च (पुरुषम्) पुत्र-पौत्रादिकम् (जगत्) जंगममन्यदपि गवाश्वादिकम् (माहिँठं०सीः) मावधीः सर्वथा स्मद्गेहे शान्ति कुर्वित्यर्थः ।।३।।

भाषार्थ—हे वेदवाणिमें स्थित। वा पर्वतपर उदित मेघवृन्दके अन्तर स्थित होकर जगत्का कल्याण करनेवाले कैलास वा वेदवाणीमें स्थितहोकर प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले तुम जिस बाणको शत्रुओंके नाश वा प्रलयमें जगत्के अस्त करनेको हाथमें धारण करते हो हे रक्षक। उस बाणको कल्याणकारी करो। पुत्र पौत्र आदि जगत्के गवाश्वादिको मत मारो, अर्थात् अकालमें हमको और इस संपूर्ण जगत्को नष्ट मत करो ।।३।।

विशेष–गिरिश्रृङ्गमें जो रहते हैं निम्न भागके मेघोपद्रव उनका अनिष्ट नहीं कर सकते इस निमित्त अधश्चारी दुर्घटनाके अन्तर स्थित देवताको गिरित्र कहते हैं। यह तत्व-वादी जन कहते हैं ।।३।।

मन्त्रः

शिवेनव्वचंसात्वागिरिशाच्छांव्वदामसि ॥ यथांनः-

सर्व्वमिज्जगंदयक्ष्मर्ठंसुमनाऽअसंत् ॥ ४ ॥

ॐ शिवेनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । निच्यृदार्ष्यनु० रु० दे० । वि० पू० ॥ ४ ॥

भाष्यम्–(गिरिश) गिरौ कैलासे शेते गिरिशः तत्सम्बुद्धौ हे गिरिश (शिवेन) मंगलरूपेण (वचसा) वचनेन (त्वा) त्वाम् (अच्छ) प्राप्तुम् (वदामसि) वदामः प्रार्थयामहे (नः) अस्माकम् (सर्वम्) सम्पूर्णम् (जगत्) जंगमं मनुष्यपश्वादि (यथा) येन प्रकारेण (अयक्ष्मम्) (व्याधिरहितम्) (सुमनः) शोभनं मनः (असत्) तथा कुर्वित्यर्थः ॥४॥

भाषार्थ—हे वेदवचन वा कैलासमें शयन करनेवाले । मंगलस्तुतिरूप वचनसे तुमको प्राप्त होनेको हम प्रार्थना करते हैं । हमको सबही जंगम, मनुष्य, पशु आदि जिस प्रकार नीरोग शुभ मनवाला होवे सो करो, अर्थात् यह जगत् स्वस्थ और रोगरहित हो । यही आपसे हमारी प्रार्थना है सो स्वीकार करो ॥४॥

विशेष—जिसका उदय सर्वदा ही पर्वतपृष्ठपर देखा जाता है, ऐसे मेघके अन्तर स्थित देवताको गिरिश कहते हैं, यह तत्त्ववादी जनोंको कथन है । तात्पर्य यह है कि रुद्रदेवता सर्वत्र विद्यमान हैं वह जगत्में मंगल करे प्रजामें कोई रोग न हो ॥४॥

मन्त्रः

अद्ध्यवोचदधिवक्क्ता प्प्रंथमो दैव्व्यो भिषक् ॥
अंहींश्चँसर्व्वाञ्जम्भयुन्त्सर्व्वाश्च यातुधान्यो धराचीः परांसुव ॥ ५ ॥

ॐ अध्यवोचदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्षी बृहती छन्द । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५ ॥

भाष्यम्–(अधिवक्ता) अधिवदनशीलः निगमकथनतत्परः (प्रथमः) पूज्यत्वात्सर्वेषां मुख्यः (दैव्यः) देवेभ्यो हितः (भिषक्) स्मरणेनैव रोगनाशको रुद्रः (अध्यवोचत्) मां सर्वाधिकं वदति, अयं याजकः सर्वाधिको भवत्विति ।परोक्षमुक्त्वा प्रत्यक्षमाह-हे रुद्र ! (च) (सर्वान्) सम्पूर्णान् (अहीन्) सर्पव्याघ्रादीन् (जम्भयन्) विनाशयन् (सर्वाः) समस्ताः (अधराचीः) अधोगोगमनशीलाः (यातुधान्यः) राक्षसीः (च) परासुव अस्मत्तो दूरीकुरु ॥५॥

भावार्थ—अधिक वदनशील सर्वदा निगम कथन करनेवाले, सब देवताओंमें मुख्य, पूजनीय, देवताओंके हितकारी, स्मरणसे ही संसार तथा जन्म मरणके रोग नाशक रुद्र हमको सबसे अधिक कहें, अर्थात् सबसे अधिक करें और सब सर्प व्याघ्र आदिको विनाश करते हुए संपूर्ण अधोगमनशील राक्षसी आदिको भी हमसे दूर करो ।।५।।

अध्यात्म—परमात्मा, हमको महावाक्यका उपदेश करो और सर्पके समान डसनेवाले काम आदिको नाश करो, और अधोगमनशील काम कलारूपी राक्षसियोंको दूर करो, अथवा संपूर्ण विद्याओंके कहनेसे ही यह सबमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं इसीसे दिव्य गुणयुक्त ज्ञानसे सबके संसारी रोगके दूर करनेवाले हैं ।।५।।

जड़वादी कहते हैं कि, गर्जन ही प्रधान शब्द है । अतिवृष्टि होनेसे ज्वरादि रोग और सर्पोंका प्रादुर्भाव होता है इनसे मृत्युसंख्या अधिक होनेकी संभावना है, प्रेतभय उपस्थित न हो इस कारण तीनों भयके निवारण करनेके निमित्त रुद्र देवसे प्रार्थना है ।।५।।

मन्त्रः

असौ॒ यस्ता॒म्रोऽअ॑रु॒णऽउ॒त ब॒भ्रुः सु॑म॒ङ्गलः॑ ॥ ये चै॑नᳬं रु॒द्राऽअ॒भितो॑ दि॒क्षु श्रि॒ताः स॑हस्र॒शोऽवै॑षा॒ᳬं हेड॑ऽईमहे ॥ ६ ॥

ॐ असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ६ ॥

भाष्यम्—आदित्यरूपेणाऽत्र रुद्रः स्तूयते—(यः असौ) प्रत्यक्षो रुद्रो रविरूपश्च (ताम्रः) उदयेऽत्यन्तरक्तवर्णः (च अरुणः) अरुणरूपः (उत) अपि (बभ्रुः) अस्तकाले पिंगलवर्णः (सुमंगलः) शोभनानि मंगलानि यस्य सः। सूर्योदये सर्वमंगलप्रवर्तनात् क्रमेणैतानि रूपाणि दधातीत्यभिप्रायः। अथवा असौ यस्ताम्रः अरुणः सुमंगलः प्रयोजनवशात् नानारूपाणि करोति (च) पुनः (ये) सहस्रशः) सहस्रशः संख्याः (रुद्राः) रुद्राः (एनम्) (अभितः) सर्वतः (दिक्षु) प्राच्यादि दिक्षु (श्रिता) आश्रिताः (एषाम्) रुद्राणाम् (हेडः) अस्मदपराधजं क्रोधम् (ईमहे) भक्त्या निवारयामः ।।६।।

भाषार्थ और जो यह प्रत्यक्ष रुद्र सूर्य्यरूप उदय समयमें अत्यन्त लालवर्ण, अस्तके समय रक्तवर्ण और मध्याह्न समयमें पिंगलवर्ण मंगलरूप कर्मोंका उदयमें विस्तार करनेवाले हैं, और जो सहस्रों रुद्रांशरूप वा किरणरूपसे इनके सब ओर दिशाओंमें स्थित हैं, अर्थात् जो सब सहस्रों देवता नक्षत्र मंगल इन देवताके दशों दिशाओं में देदीप्यमान हैं इन्हींका क्रोध हम भक्ति द्वारा निवारण करते हैं ।।६।।

मन्त्रः

असौयोऽवसर्प्पतिनीलग्ग्रीवोव्विलोहितः ॥ उतैनंङ्गो-
पाऽअदृश्श्रन्नदृश्श्रन्नुदहार्य्यः सदृष्टोमृडयातिनः ॥७

ॐ असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विराडार्षी पंक्ति-
श्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ७ ॥

भाष्यम् (यः) (असौ) आदित्यरूपः (नीलग्रीवः) विषधारणेन नीला ग्रीवा क
यस्य अस्तमये नीलकण्ठ इव लक्ष्यः (उत) (विलोहितः) रक्तः (अवसर्पति) उद
स्तमयो कुर्वन्निरन्तरं गच्छति (एनम्) रुद्रम् (गोपाः) गोपालाः वेदोक्तसंस्कारही
(अदृश्रन्) पश्यन्ति (उदाहार्यः) जलहारिण्यो योषित अपि (अदृश्रन्) पश्यन्ति (स
शंकरः (दृष्टः) दृष्टः सन् (नः) अस्मान् (मृडयाति) सुखयतु ॥७॥

भाषार्थ—जो यह विष धारणसे नीलग्रीव वा अस्त समयमें नीलकंठके समान अ
विशेष रक्तवर्ण आदित्य रूपसे उदय अस्त करते निरंतर गमन करते हैं, इनको वेदो
संस्कारहीन गोपाल तक देखते हैं, जल ले जानेवाली नारी भी दर्शन करती हैं, वह रुद्र द
पथमें प्राप्त होते ही हमको सुखी करें । सूर्य्यमें नीलिमा आकाशकी नीलतासे कही है
गोष्ठमें गोपालः नदी आदि तीरपर पनिहारी इनकी शोभा अतिशय देखती हैं । पक्षान्तर
इन्द्रियगोलकोंकी रक्षक इन्द्रिय शक्ति गोप, और अमृतकी प्राप्ति करनेवाली प्रज्ञाश
उदकहारी हैं ॥७॥

मन्त्रः

नमोऽस्तुनीलग्ग्रीवायसहस्राक्षायमीढुषे ॥ अथोये
अंस्यसत्त्वानोहन्तेभ्योकरन्नमः ॥ ८ ॥

ॐ नमोस्त्वित्यस्य । प्रजापतिर्ऋषिः । निच्यृदार्ष्यनुष्टु
छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ८ ॥

भाष्यम्–(नीलग्रीवाय) नीलकण्ठाय (सहस्राक्षाय) सहस्रमक्षीणी यस्य इ
स्वरूपिणि (मीढुषे) वृष्टिकर्त्र पर्जन्यरूपाय (नमः) नमस्कारः (अस्तु) भवन्तु (अथो
अपि (अस्य) रुद्रस्य (ये) सत्त्वानः प्राणिनः सेवकाः सन्ति (तेभ्यः) (अहम्) स्तुतिक
(नमः) नमस्कार (अकरम्) करोमि ॥८॥

भावार्थ–नीलकण्ठ, सहस्रनेत्र, सब जगत्को देखनेवाले, अथवा इन्द्रस्वरूप वा बहु रश्मि रूप सेचनमें समर्थ पर्जन्यरूप रुद्रके निमित्त नमस्कार हो । और इस रुद्र देवताके जो अनुचरविशेष हैं, मेषादि राशि हैं, उनके निमित्त मैं नमस्कार करता हूं । तात्पर्य यह–यह सबही शिवरूप हैं सबमें रुद्र वर्तमान है ॥८॥

मन्त्रः

प्रमुंञ्चधन्वंनस्त्वमुभयोरात्क्न्योंज्ज्याम् ॥ याश्चतेह-स्तऽइषंवऽपराताभंगवोव्वप ॥ ९ ॥

ॐ प्रमुञ्चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ९ ॥

भाष्यम्–(भगवः) हे भगवन् परमैश्वर्यसम्पन्न (धन्वनः) धनुषः (उभयोः)द्वयोः (आर्त्न्योः) कोटचोः स्थिताम् (ज्याम्) मौर्वीम् (त्वं) (प्रमुञ्च) दूरीकुरु (च) (याः) (ते) तव (हस्ते करे) (इषवः) वाणाः सन्ति (ताः) शरान् (परावप) पराक्षिप ॥९॥

भावार्थ—हे षडैश्वर्य संपन्न भगवन् । आप धनुषकी दोनों कोटियोंमें स्थितज्याको दूर करो अर्थात् उतारलो । और जो आपके हाथमें बाण हैं उनको दूर त्याग दो हमारे निमित्त सौम्यमूर्ति हो जाओ । हमारे लिये किसी प्रकारका रोग शोक न हो यही आपसे प्रार्थना है ॥९॥

मन्त्रः

व्विज्ज्यन्धनुं÷कपर्दिनोव्विशंल्योबाणंवाँ ॥२॥ऽउत ॥ अनेशन्नस्युयाऽइषंवऽआभुरंस्यनिषङ्गधिः ॥ १० ॥

ॐ विज्ययन्धनुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः भुरिगार्ष्यनुष्टु-प्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्–(कपर्दिनः) कपर्दो जटाजूटोऽस्यास्तीति कपर्दी तस्य रुद्रस्य (धनुः) शरासनम् (विज्यम्) मौर्वीरहितमस्तु (उत) च बाणवान् इषुधिः (विशल्यः) विफलोऽस्तु (अस्य) रुद्रस्य (याः) (इषवः) शराः ताः (अनेशन्) नश्यन्तु (अस्य) रुद्रस्य (निषंगधिः) कोशः सः (आभुः) खड्गरहितोऽस्तु । रुद्र अस्मान्प्रति न्यस्तसर्व शस्त्रो-स्त्वित्यर्थः ॥१०॥

भावार्थ—जटाजूटधारी रुद्रका धनुष ज्याहरहित हो, और तरकस भालवाले बाणों रीता हो, इन देवताके जो बाण हैं वे अदर्शनको प्राप्त हों, इनके खड्ग रखनेका कोश री: हो अर्थात् रुद्र हमारे प्रति सर्वथा न्यस्तशस्त्र हों ।।१०।।

मन्त्रः

यातेहेतिम्मींढुष्टमहस्तेबभूवंतेधनुंः ॥ तयास्मान्वि श्वतस्त्वमयक्ष्मयापरिभुज ॥ ११ ॥

ॐ यात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । निच्यृदनुष्टुप्छन्दः रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्–(मीढुष्टम) सेक्तृतम ववर्षुक (ते) तव हस्ते (या) (हेतिः) धनु मायुधमस्ति (ते हस्ते) करे (धनुः) धनुः (बभूव) अस्ति (तया) धनूरूपया (अयक्ष्म निरुपद्रवया दृढया हेत्या (विश्वतः) सर्वतः (अस्मान्) नः (परिभुज) परिपालय ।।११।।

भावार्थ—हे अत्यन्त ज्ञानामृत वा वर्षासे सींचनेवाले तुम्हारे हाथमें जो आयुध आपके हाथमे जो धनुष है उस उपद्रवरहित धनुषरूप हेतिसे आप सब ओरसे हमको पाल करो अर्थात् आप वर्षा करनेवाले अस्त्रको ही धारण कीजिये किन्तु उससे कोई उपद्रव हो ।।११।।

मन्त्रः

परितेधन्वनोहेतिरस्म्मान्वृंणक्तुविश्वतंः ॥ अथ सऽइषुधिस्तवारेऽअस्म्मन्निधेहितम् ॥ १२ ॥

ॐ परीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । निच्यृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ १२ ॥

भाष्यम्–हे रुद्र (ते) तव (धन्वनः) धनुः सम्बन्धि (हेतिः) आयुधम् (विश्वत सर्वतः (अस्मान्) परिवृणक्तु (त्यजतु) अथो (अपिच) यः (तव) (इषुधिः) कोशो (तम् अस्मत्) सकाशात् (आरे) दूरे (निधेहि) स्थापय ।।१२।।

भावार्थ—हे रुद्र । तुम्हारे धनुषसंबंधी आयुध सब ओरसे हमको त्याग और जो तुम्हारा तरकस है उसको हमारे निकटसे दूर स्थापन करो । आशय यह कि, हम कर्मोंद्वारा जो व्याधि होती हैं वह तुम्हारी सत्तासे हैं सो हमको कष्ट न दें ।।१२।।

मन्त्रः

अवतत्त्यधनुष्ट्वꣳसहस्राक्षशतेषुधे ॥ निशीर्य्यशल्यानाम्मुखाशिवोनः सुमनाभव ॥ १३ ॥

ॐ अवतत्त्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ १३ ॥

भाष्यम्–(सहस्राक्ष) सहस्रमक्षीणि यस्य तत्सम्बुद्धौ (शतेषुधे) शतमिषुधयो यस्य तत्सम्बुद्धौ (त्वम्) (धनुः) शरासनम् (अवतत्य) अपज्याकं कृत्वा (शल्यानाम्) शराणाम् (मुखाः) अग्राणि (निशीर्य) शीर्णानि कृत्वा (नः) अस्मान्पति (शिवः) शान्तः (सुमनाः) शोभनचित्तश्च (भव) अनुगृहाणेत्यर्थः ॥१३॥

भावार्थ—हे विराट् । हे सहस्रनेत्र । हे सहस्रोंतरकसवाले । तुम धनुषको ज्यो रहित करो ओर बाणोंके मुख (भाल) निकालकर हमको शान्त, शोभनचित्त हो अर्थात् हमपर कृपा करो ॥१३॥

मन्त्रः

नमस्तऽआयुधायानाततायधृष्णवे ॥ उभाब्भ्यामुततेनमोबाहुभ्यान्तवधन्वने ॥ १४ ॥

ॐ नमस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । रुद्रो देवता ० । वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्–हे रुद्र (ते) तव (अनातताय) धनुष्यनारोपिताय (आयुधाय) बाणाय (नमः) नमोऽस्तु (ते) तव (धृष्णवे) घर्षणशीलाय रिपून् हन्तुं प्रगल्भाय (धन्वने) धनुषेऽपि (नमः) नतिरस्तु (उत) च (ते) तव (आभ्याम्) द्वाभ्याम् (बाहुभ्याम्) (नमः) भुजाभ्याम् (नमः) नमस्कारोऽस्तु ॥१४॥

भावार्थ—हे रुद्र ! आपके धनुषपर न चढ़ाये हुए बाणके निमित्त नमस्कार है, आपके दोनों बाहुओंके निमित्त और आपके शत्रु मारनेमें प्रगल्भ धनुषके निमित्त नमस्कार है ॥१४॥

मन्त्रः

मानोमहान्तमुतमानोऽअर्ब्भकम्मानऽउक्षन्तमुतमानऽ-उक्षितम् ॥ मानोंव्वधीःपितरम्मोतमातरम्मानं÷प्प्रियास्तन्न्वोरुद्ररीरिषः ॥ १५ ॥

ॐ मानो महान्त इत्यस्य कुत्स ऋषिः। निच्यृदार्षी जगती छन्दः । रुद्रो० दे० । वि० पू० ॥ १५ ॥

भाष्यम्—हे रुद्र (नः) अस्माकम् (महान्तम्) वृद्धं गुरुपितृव्यादिकम् (मावधीः) मा हिंसीः (उत) अपि (नः) अस्माकम् (अर्भकम्) बालकम् (मा) मावधीः (नः) अस्माकम् (उक्षन्तम्) सिञ्चन्तं तरुणम् (मा) मावधीः (उत) अपि (नः) अस्माकम् (उक्षितम्) सिक्तं गर्भस्थम् (मा) मावधीः (नः) अस्माकम् (पितरम्) जनकम् (मा) मावधीः (उत) अपिः (नः) (मातरम्) जननीम् (मा) मावधीः (नः) अस्माकम् (प्रियाः) वल्लभाः (तन्वः) पुत्रपौत्ररूपाणि शरीराणि (मा रीरिषः) मा हिंसीः ॥१५॥

भाषार्थ—हे रुद्र । हमारे वृद्ध गुरु पितृव्य आदिको कर्मानुसार मत मारो । और बालकको मत मारो, हमारे तरुणको मत मारो और हमारे गर्भस्थ बालको मत मारो, हमारे पिताको मत मारो, और हमारी माताको मत मारो, हमारे प्यारे शरीर पुत्र पौत्र आदिको मत मारो । आशय यह कि, यदि कर्मानुसार उनकी आयु पूरी हो गई तो हो भी आपको कृपा होनी चाहिये ॥१५॥

मन्त्रः

मानस्तोकेतनयेमानऽआयुषिमानोगोषुमानोऽअश्वेषुरीरिषः ॥ मानोव्वीरान्नुद्रभामिनोव्वधीर्हविष्म्मन्तःसदमित्त्वाहवामहे ॥ १६ ॥

ॐ मानस्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निच्यृदार्षी जगती छन्दः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ १६ ॥

भाष्यम्—हे रुद्र (नः) अस्माकम् (तोके) पुत्रे (तनये) पौत्रे (मा रीरिषः) मा हिंसीः (नः आयुषि) जीवने (मा) मा हिंसीः (नः) (गोषु) धेनुषु (मा) मा हिंसी (नः) (अश्वेषु) तुरगेषु (मा) मा हिंसीः (नः भामिनः) क्रोधयुतान् (वीरान्) भृत्यान् (मावधीः) मा हिंसीः (हविष्मन्तः) हविर्युक्ताः (सदमित्) सदैव (त्वा) (हवामहे) वयं यागायाह्वयामः। त्वदेकशरणा वयमित्यर्थः ।।१६।।

भावार्थ—हे रुद्र। हमारे पौत्र पुत्रको मत मारो, हमारी आयुको मत नष्ट करो हमारी गौओंमें प्रहार मत करो, हमारे घोड़ोंमें प्रहार मत करो, हमारे क्रोधयुक्त वीर-पुरुषोंको मत मारो। हवियुक्त निरन्तर आपको हम यज्ञके निमित्त आह्वाहन करते हैं। अर्थात् आपकी ही शरण हैं। तात्पर्य यह है कि—ईश्वर रुद्र किसीको नहीं मारते पर कर्मानुसार रोगादि में अपनी शक्तिकी प्रेरणा करते हैं उन पापोंसे अनिष्ट न होनेकी प्रार्थना है ।।१६।।

मन्त्रः

नमो॒ हिर॑ण्यबाहवे सेना॒न्ये॑ दि॒शाञ्च॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यः प॒शू॒नाम्पत॑ये॒ नमो॒ नम॑: श॒ष्पिञ्ज॑राय॒ त्विषी॑मते पथी॒नाम्पत॑ये॒ नमो॒ नमो॒ हरि॑केशायोपवी॒तिने॑ पु॒ष्टाना॒म्पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ बभ्लु॒शाय॑ ॥ १७ ॥

ॐ नम इत्यस्य कुत्स ऋषिः निच्यृदतिधृतिश्छन्दः। रुद्रो देवता। जपे विनियोगः ॥ १७ ॥

भाष्यम्—(हिरण्यबाहवे) हिरण्यमाभरणरूपं बाह्वोर्यस्य स हिरण्यबाहुः तस्मै (सेनान्ये) सेनां नयतीति सेनानीः तस्मै (नमः) रुद्राय नमः (च) विशांपतये) पालकायः रुद्राय (नमः) नमः (हरिकेशेभ्यः) हरितवर्णाः केशाः पर्णरूपाः येषां ते हरिकेशास्तेभ्य, (वृक्षेभ्यः) वृक्षरूपरुद्रेभ्यः (नमः) नमः (पशूनाम्) जीवानाम् (पतये) पालकाय रुद्राय (नमः) नमः (त्विषीमते) त्विषिर्दीप्तिरस्यास्ति तस्मै (शष्पिञ्जराय) शष्पं बालतृणं तद्वत्पिञ्जराय पीतरक्तवर्णाय रुद्राय (नमः) नमोऽस्तु, (पथीनाम्) मार्गाणां पालकाय रुद्राय (नमः) नमः (हरिकेशाय) नीलवर्णकेशाय जरारहिताय (उपवीतिने) मंगलार्थ-यज्ञोपवीतधारिणे रुद्राय (नमः) नतिरस्तु (पुष्टानाम्) गुणपूर्णानां नराणाम् (पतये) पालकाय स्वामिने (नमः) नमोऽस्तु ।।१७।।

भावार्थ—भुजाओंमें सुवर्ण धारण करनेवाले महाबाहु सेनापालक रुद्रके निमि
नमस्कार है, दिशाओंके अधिपति अर्थात् समस्त जगत्को अपनी भुजाओंके नीचे रक्षाकर
वाले सेनापतिके निमित्त भी नमस्कार है, पर्णरूप हरे बालों वाले वृक्षरूप रुद्रोंके निमि
बारंबार नमस्कार है, जीवोंके पालन करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, कान्तिमा
बालतृणवत् पीतवर्ण वाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, मार्गोंके पालन करनेवाले रुद्रके निमि
नमस्कार है, मंगलके निमित्त उपवीत धारण करनेवाले नीलवर्ण केश वा जरारहित रुद्र
निमित्त नमस्कार है, गुणपूर्ण मनुष्योंके स्वामी रुद्रके निमित्त नमस्कार है ।।१७।।

तात्पर्य—तात्पर्य यह सय मार्गोंमें शान्तरूप रुद्र है,अश्वत्थादि वृक्षोंपर जैसे आका
बेल आदि निर्मूल लता होती हैं तद्वत् यज्ञोपवीत धारे हैं विना रुद्रके किसीकी स्थिति नहीं हे
सकती इससे रुद्र सबके स्वामी कहाते हैं ।।१७।।

मन्त्रः

नमोबभ्लुशायव्याधिनेन्नानाम्पतयेनमो नमोभव-
स्यहेत्यैजगताम्पतयेनमोनमोरुद्रायाततायिनेक्षेत्राणा-
म्पतयेनमोनमः सूतायाहन्त्यैवनानाम्पतयेनमोनमोरो
हिताय ॥ १८ ॥

ॐ नम इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निचृदष्टिश्छन्दः । रुद्रो
देवता । वि० पू० ॥ १८ ॥

भाष्यम्–(बभ्लुशाय) कपिलवर्णाय यद्वा-बिभर्ति रुद्रमिति बभ्लुर्वृषभस्तस्मि
शेते व बभ्लुशस्तस्मै रुद्राय (नमः) नमः (व्याधिने) विध्यति शत्रूनितिव्याधी तस्मै रुद्राय
नमः (अन्नानाम्) धान्यानाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमः भवस्य (संसारस्य) (हेत्यै)
आयुधाय संसारनिवर्तकाय रुद्राय (नमः) नतिरस्तु (जगतां पतये) पालकाय रुद्रा
(नमः) नमः (आततायिने) आततेन विस्तृतेन धनुषा सह एति गच्छतीति आतताय
उद्यतायुधस्तस्मै रुद्राय (नमः) नमः (क्षेत्राणाम्) देहानाम् (पतये) रक्षकाय पालका
(नमः) नमः (अहन्त्रे)न हन्तीति–अहन्ति तस्मै (सूताय) सारथये तद्रूपाय (नमः) नम
(वनानाम्) अरण्यानाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोस्तु ।।१८।।

भावार्थ—कपिलवर्ण वा वृषभपर स्थित होनेवाले शत्रुओंको वेधनेवाले व्याधिरू
रुद्रको नमस्कार है । अन्नोंके पालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है, संसारके आयुध अर्था

संसार निवर्तक रुद्रके निमित्त नमस्कार है, संसारके पालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है-अघत आयुधवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, देहोंके पालन करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, नहीं मारनेवाले, पापसे रक्षक प्रधान सारथी रूपके निमित्त नमस्कार है, वनोंके पालकके निमित्त नमस्कार है ।।१८।।

विवरण—रोगियोंका रक्तह्रास होनेपर जो वर्ण होता है उसको बभ्लुश कहते हैं ।।१८।।

मन्त्रः

नमोरोहिंतायस्त्थपतंयेव्वृक्षाणांपतंयेनमो नमोंभुवन्तयेंव्वारिवस्कृतायौषंधीनाम्पतंयेनमोनमों मन्त्रिणेंव्वाणिजायकक्षांणाम्पतंयेनमोनमंऽउच्चैर्घोषायाक्क्रन्दयंते पत्तीनाम्पतंयेनमोनमं÷कृत्स्नाय ॥ १९ ॥

ॐ नम इत्यस्य कुत्स ऋषिः । विराडतिधृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता विनियोगः ॥ १९ ॥

भाष्यम्–(रोहिताय) लोहितवर्णाय (स्थपतये) स्थपतिगृहादिकर्ता विश्वकर्मरूपेण तस्मै (नमः) नतिरस्तु (वृक्षाणाम्) तरूणाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमः (भुवन्तये) भूमण्डलविस्तारकारिणे (वारिवस्कृताय) स्थानभोग्यकराय (नमः) नमोस्तु (ओषधीनाम् ग्राम्यारण्यानामोषधीनाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (मंत्रिणे) सचिवरूपिणे (वाणिजाय) व्यापारकर्त्रे रुद्राय (नमः) नमोऽस्तु (कक्षाणाम्) वनोत्पन्ना गुल्मवीरुधादयः कक्षास्तेषाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (उच्चैःघोषाय) युद्धे महाशब्दाय (आक्रन्दयते) रिपुरोदकाय (नमः) नमोऽस्तु (पत्तीनाम्) पदातीनाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु ।।१९।।

भावार्थ—लोहितवर्ण गृहादिकर्ता विश्वकर्मरूपके निमित्त नमस्कार है, वृक्षोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, भूमंडलके विस्तार करनेवाले स्थानभोग्य करनेवाले के निमित्त नमस्कार है, ग्राम्य और आरण्य औषधियोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, आलोचनमें कुशल व्यापार कर्ताओं रूपमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, वनके गुल्मवीरुधादिके निमित्त नमस्कार है, शत्रुओंको रुलानेवाले, युद्धमें बड़ा उग्र शब्द करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, एक रथ, एक हाथी तीन घोड़े, पांच पैदलका नाम पत्ति है । इस प्रकार सेना-विशेषके पालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है ।।१९।।

विशेष—स्थपति—शब्दसे गृह आदि निर्माण करनेवाले इनके मनमें सदा ही इष्टका की चिन्ता लगी रहती है, इस कारण इनका अन्तर देवता लोहितवर्ण कहा है, कारण इष्टका लाल होती हैं ।।१९।।

मन्त्रः

नमः॑ कृत्स्नायतया धाव॑ते सत्त्वा॑नाम्पत॑ये नम॒ऽ सह॑माना॒य निव्या॒धिन॑ऽआव्याधिनी॑नाम्पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ ककु॒भाय॑ स्ते॒नाना॒म्पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निचे॒रवे॑ परिच॒राया॒रण्या॑नाम्पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ वञ्चते ॥ २० ॥

ॐ नम इत्यस्य कुत्स ऋषिः अतिधृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २० ॥

भाष्यम्–(कृत्स्नायतया) कृत्स्नं समग्रमायतं विस्तृतम् अर्थाद्धनुर्यस्य स कृत्स्नायत स्तस्य भावः कृत्स्नायतता तया आकर्णपूर्णधनुष्ट्वेन (धावते) युद्धे शीघ्रं गच्छते रुद्राय (नमः) नतिरस्तु । अथवा कृत्स्नः सर्व आयो लाभो यस्य सः कृत्स्नायस्तस्य भावः कृत्स्नायता तया (धावते) सर्वलाभप्रापकत्वेन धावते (सत्त्वानाम्) शरणागतानां प्राणिनां (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (सहमानाय) अभिभवनशीलाय (निव्याधिने) नितरां विध्यति हन्ति शत्रूनिति निव्याधी तस्मै (नमः) नमः (आव्याधिनीनाम्) आ समन्ताद्विध्यन्तीत्याव्याधिन्यः शूरसेनास्तासाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमः (निषङ्गिणे) खड्गयुक्ताय (ककुभाय) महते रुद्राय नमः (स्तेनानाम्) गुप्तचोराणाम् (पतये) पालकाय (नमः' नमः (निचेरवे) नितरां चेरुः निचेरुः तस्मै (परिचराय) परितः चरतीति परिचरस्तस्मै (नमः) नमः (अरण्यानाम्) वनानाम् (पतये) पालकाय (नमः) नतिरस्तु ।।२०।।

भाषार्थ—जो हमारी रक्षा निमित्त कर्णपर्यन्त धनुप खेंचकर धावमान होते हैं, उन रुद्रके निमित्त नमस्कार है, अथवा सव लाभ प्राप्त करानेवालेके निमित्त नमस्कार है, शरणमें आये हुए प्राणियोंके पालक रुद्रके निमित्त नमस्कार है, शत्रुओंका तिरस्कार करनेवाले, शत्रुओंको अधिक मारनेवालेके निमित्त नमस्कार है, सब प्रकारसे प्रहार करनेवाली शूद्रसेनाओंके पालकके निमित्त नमस्कार है, उपद्रवकारियोंपर खड्ग चलानेवाले महान् रुद्रके निमित्त नमस्कार है, गुप्तवनहारी जनोंके सब रूप होनेसे पालन करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, अपहारकी वृद्धिसे निरन्तर फिरनेवाले तथा आपण स्थानमें हरणकी इच्छा

फिरनेवालों (गठकटों) के अन्तर्यामीके निमित्त नमस्कार है, वनोंके पालन करनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥२०॥

विवरण—जगत्‌भरमें सर्वात्मा रुद्र हैं, इस कारणसे स्तेनादि भी रुद्ररूप लिखे है स्तेनादिके शरीरमें जीव ईश्वर इन दो रूपोंसे ईश्वर स्थित हैं, जीवरूप स्तेनादि शब्दवाच्य है, ईश्वर रूद्ररूपसे लक्षित है—जैसे शाखाके अग्रसे चन्द्रमाको दिखाते हैं इस प्रकार लक्ष्यार्थकी विवक्षासे मंत्रोंमें लौकिक शब्द लिखे हैं ॥२०॥

मन्त्रः

नमो॑ऽवञ्च॑ते परिवञ्च॑ते स्ताय॒ूनाम्पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ऽइषुधि॒मते॒ तस्क॑राणा॒म्पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ सृकायि॒भ्यो जिघा॑ᳪसद्भ्यो मुष्ण॒ताम्पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ऽसि॒मद्भ्यो॒ नक्तञ्च॑रद्भ्यो विकृ॒न्तानाम्पत॑ये॒ नमः॑ ॥ २१ ॥

ॐ नमो वञ्चत इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २१ ॥

भाष्यम्–(वञ्चते) वञ्चति प्रतारयति तस्मै, वा गमनशीलाय रुद्राय (नमः) नमोऽस्तु (परिवञ्चते) सर्वतो गमनशीलाय वा सर्वव्यवहारे धनापह्नवः परिवञ्चनम् । गुप्तचौरा द्विविधाः–रात्रौ वेश्मनि खातादिना द्रव्यहर्तारः स्वीया एवाऽहर्निशं ज्ञातारो हर्तारश्च पूर्वे स्तेना उत्तरे स्तायवः तेषाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोऽस्तु (निषङ्गिणे) खड्गिने (इषुधिमते) इषुधिस्तूणस्तत्सहिताय (नमः) नमोऽस्तु (तस्कराणाम्) प्रकटचोराणाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोस्तु (सृकायिभ्यः) सृकेण वज्रेण सह यन्ति गच्छन्तीत्येवंशीलाः सृकायिणः तेभ्यः (जिघांसद्भ्यः) हन्तुमिच्छद्भ्यः तेभ्यो-रुद्रेभ्यः (नमः) नमोस्तु (मुष्णताम्) क्षेत्रादिषु धान्यानामपहर्तारो मुष्णन्तस्तेषाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोस्तु (असिमद्भ्यः) असियुक्तेभ्यः (नक्तञ्चरद्भ्यः) रात्रौ गच्छद्भ्यः रुद्रेभ्यः (नमः) नमोस्तु (विकृन्तानां) विकर्तनशीलानाम् (पतये) पालकाय-(नमः) नमोस्तु ॥२१॥

भाषार्थ—ठगोंके अन्तर्यामीके निमित्त स्वामीको अपना विश्वास दिलाकर व्यवहारमें उनको वंचन करनेवालोंके साक्षीके निमित्त नमस्कार है, गुप्तचोरोंके पालकके

निमित्त नमस्कार है, खड्गधारी, बाणधारीके अर्थात्-उपद्रव करनेवालेके शान्त कर वालोंके निमित्त नमस्कार है, प्रकाश चोरोंके पालकके निमित्त नमस्कार है, वज्र लेक चलनेवाले हत्याकारी जनोंके अन्तर्यामी वा उनके रूप रुद्रोंके निमित्त नमस्कार है, क्षे आदिसे धनादिके हरण करनेवालोंके पालन करनेवाले रुद्रके निमित्त नमस्कार है, खड्ग धारी रात्रिमें फिरनेवाले दस्युगणोंके हृदयमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, छेदन कर पराया धन हरनेवाले दस्युगणके पालन करनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥२१॥

मन्त्रः

नमः॑ऽउष्णी॒षिणे॑गिरिच॒राय॑कुलु॒ञ्चानां॒म्पत॑येनमो॒नमः॑ऽ इषु॒मद्भ्यो॑धन्वा॒यिभ्य॑श्चवो॒नमो॒नमः॑ऽआत॒न्वाने॒भ्यः॑ प्रति॒दधा॑नेभ्यश्चवो॒नमो॒नमः॑ऽआय॒च्छद्भ्यो॒ स्यद्भ्य॑श्चवो॒नमो॒नमो॑वि॒सृ॒जद्भ्य॑: ॥ २२ ॥

ॐ नम ऊष्णीषिण इत्यस्य कुत्स। निचृद्दष्टि ऋषिश्छंदः रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २२ ॥

भाष्यम्–(उष्णीषिणे) उष्णीषं शिरोवेष्टनमस्यास्तीत्युष्णीषी तस्मै (गि चराय) गिरौ चरति पर्वतसंचारिणे (नमः) नमोऽस्तु (कुलुञ्चानाम्) कुं भूमिं क्षेत्र गृह दिरूपां लुञ्चन्ति हरन्ति कुलुञ्चाः तेषाम् (पतये) पालकाय (नमः) नमोस्तु (इ मद्भ्यः) जनान भाषयितुं बाणधारिणस्तेभ्यो रुद्रेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (च) अपि (धन्व यिभ्यः) हे रुद्राः— धनुर्धारिभ्यः (वः) युष्मभ्यम् (नमः) नमोऽस्तु (आतन्वानेभ्य आतन्वन्त्यारोपयन्ति ज्यां धनुषीत्यातत्वानास्तद्रूपेभ्यः (नमः) नमोस्तु (च) अ (प्रतिदधानेभ्यः प्रतिदधते सन्दधते बाणं धनुषीति सन्दधानास्तेभ्यः) (वो) युष्मभ्य (नमः) नमोऽस्तु (आयच्छद्भ्यः) आयच्छन्त्याकर्षन्ति धनूंषि ते आयच्छन्तस्तेभ्यः (नम नमः (च) अपि (अस्यद्भ्यः) अस्यन्ति क्षिपन्ति बाणानित्यस्यन्तस्तेभ्यः (वः) यु द्भ्यः (नमः) नमोऽस्तु ॥२२॥

भावार्थ—उष्णीष (पगड़ी) धारण करनेवाले सभ्यगण ग्रामोंमें विचरनेव शून्यमस्तक गिरि वनमें फिरनेवाले दोनों प्रकार दलोंके हृदयमें स्थित रुद्रके निमित्त न स्कार है, छल बल कौशलसे दू सरोंकी गृह भूमि आदि हरण करनेवालोंके पालकके निमि नमस्कार है, मनुष्योंके डरानेको बाण धारण करनेवाले, और धनुष साथ लेकर चलनेव

वा कुलुञ्चगणोंके दमनार्थ बाणधारी आप रुद्रके निमित्त नमस्कार है, कुलुंचोंके दमनार्थ धनुषपर ज्या आरोपण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और धनुषपर बाण चढ़ानेवाले के आपके निमित्त नमस्कार है कुलुंचोंके दमनके निमित्त धनुषको आकर्षण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और बाणोंके निक्षेप करनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है ॥२२॥

मन्त्रः

नमोविसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्चवोनमो नमः स्वप-
द्भ्योजाग्रद्भ्यश्चवोनमोनमःशयानेभ्यऽ आसीने-
भ्यश्चवोनमोनमस्तिष्ठद्भ्योधावद्भ्यश्चवोनमोनमः
सभाभ्यः ॥ २३ ॥

ॐ नमो विसृजद्भ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निचृदति-
जगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २३ ॥

भाष्यम्—(विसृजद्भ्यः) विमुञ्चति बाणानरिष्विति विसृजन्तः तेभ्यः (नमः) (च) अपि (विध्यद्भ्यः (शत्रून् ताडयद्भ्यः (वः) युष्मभ्यम्) नमः) नमोऽस्तु (स्वपद्भ्यः) स्वप्नावस्थामनुभवद्भ्यः (जाग्रद्भ्यश्च) जाग्रदवस्थावन्तस्तेभ्यो (वः) युष्माकम् नमोऽस्तु (शयानेभ्यः) सुषुप्त्यवस्थावद्भ्यः (च आसीनेभ्यः) आसते ते आसीना तेभ्यश्च (वो नमः) नमोऽस्तु (तिष्ठद्भ्यः) स्थितिं कुर्वद्भ्यः (नमः) नमोऽस्तु (धावद्भ्यः) धावन्ति ते धावन्तो वेगवगद्तयस्तेभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु परमद्वैतप्रतिपादनायस्तुतिः ॥२३॥

भावार्थ—पापियोंके दमनार्थ बाण त्यागनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और शत्रुओंके लक्ष्य वेधनेवाले आपके निमित्त नमस्कार है, और जाग्रत् अवस्थाके अनुभवी आपके निमित्त नमस्कार है, सुषुप्ति अवस्थावालोंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, बैठे हुओंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, वेगवान् गतिवालोंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है ॥२३॥

मन्त्रः

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्चवोनमो नमोऽश्वे-
भ्योऽश्वपतिभ्यश्चवोनमोनमऽआव्याधिनीभ्यो-

विविध्यन्तीभ्यश्चवो नमो नमऽउगणाभ्यस्तृꣳह-
तीभ्यश्चवो न मो नमो गणेभ्यः ॥ २४ ॥

ॐ नमः सभाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । शक्वरी छन्दः रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २४ ॥

भाष्यम्—(सभाभ्यः) सभारूपेभ्यः रुद्रेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (चसभापतिभ्य सभायाः पतिभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु सभादिषु रुद्रदृष्टिः कर्तव्येव तात्पर्यम् । (अश्वेभ्य अश्वास्तुरगास्तेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (अश्वपतिभ्यः)अश्वानां पतिभ्यः (वो नमः नमोऽस्तु (आव्याधिनीभ्यः) आविध्यन्तीत्याव्याधिन्यः सेनास्ताभ्याः (नमः) नमः (च अपि (विविध्यन्तीभ्यः) विशेषेण विध्यन्तीति विविध्यन्त्यः ताभ्यः (वो नमः) नमोऽ (उगणाय) उत्कृष्टा गणाः भृत्यसमूहाः यासां ताः उगणा ब्रह्मादयः मातरस्ताभ्यः (नमः नमोऽस्तु (च) अपि (तृꣳहतीभ्यः) हन्तुं समर्थाः दुर्गादयस्ताभ्यः (वो नमः) नमो ऽस्तु ॥२४॥

भावार्थ—अब वातसंज्ञक रुद्र जो रुद्रलोकमें निवास करते हैं, अद्वैत प्रतिपादन निमित्त उनका वर्णन करते हैं—सभारूप रुद्रके निमित्त नमस्कार है, सभा आदिमें रु दृष्टि करनी चाहिये । और सभापतिरूप आपके निमित्त नमस्कार है,.प्रत्येक अश्वोंके अन्त रमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, और अश्वोंके अधिपति आपके निमित्त नमस्का है, देव सेनाओंमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, और विशेषकर वेधनेवाली देव सेना ओंमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, उत्कृष्ट भृत्यु समूहवाली ब्राह्मी आदि माता सेनामें स्थित रुद्रके निमित्त नमस्कार है, और युद्धमें प्रहार करानेवाले दुर्गादिमें स्थि आपके निमित्त नमस्कार है ॥२४॥

मन्त्रः

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्चवो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्चवो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्संपतिभ्य श्चवो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो नमः सेनाभ्यः ॥ २५ ॥

ॐ नमो गणेभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिक्छक्वरी छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २५ ॥

भाष्यम्–(गणेभ्यः) गणः समूहः तत्स्वरूपेभ्यः (नमः) नमः (गणपतिभ्यश्च) गणपालकास्तेभ्यश्च (वो नमः) नमस्कारः, (व्रातेभ्यः) नानाजातीयानां संघास्तेभ्यः (नमः) नमः (च) व्रातपतिभ्यः व्रातपालकास्तेभ्यः (वः) (नमः) नमः (गृत्सेभ्यः गृत्सा मेधाविनस्तेभ्य (नमः) नमः (च) गृत्सपतयस्तत्पालकास्तेभ्यः (वः) युष्माकम् (नमः) नमः (विरूपेभ्यः) नग्न मुण्डजटिलादयस्तेभ्यः (नमः) नमः (विश्वरूपेभ्यः) नानाविधं रूपं येषान्ते विश्वरूपास्तुरङ्गवदनहयग्रीवादयस्तेभ्यः (वः) (नमः) नमः ।।२५।

भावार्थ––देवानुचर भूतविशेषोंके निमित्त नमस्कार है, गणोंके अधिपति आपके निमित्त नमस्कार है, विशेष गण अथवा अनेक जातियोंके समूहके निमित्त नमस्कार है, व्रातगणोंके अधिपति आपके निमित्त नमस्कार है, बुद्धिमानोंके अथवा विषय लंपटके निमित्त नमस्कार है, और बुद्धिमानोंके रक्षक आपके निमित्त नमस्कार है, नग्न-मुण्ड-जटिलादि विकृतरूपके निमित्त वा विविध रूपवालोंके निमित्त नमस्कार है, सर्वस्वरूप नानाविधरूप वा तुरंगवदन हयग्रीवादि रूप आपके निमित्त नमस्कार है ।।२५।।

मन्त्रः

नमः॑ सेना॑भ्यः सेना॒निभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॒ रथि॑भ्योऽ अरथे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ क्ष॒त्तृभ्यः॑ सङ्ग्रही॒तृभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ मह॒द्भ्योऽ अर्भ॒केभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥२६॥

ॐ नमः सेनाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगतिजगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २६ ॥

भाष्यम्–(सेनाभ्यः) चमूस्वरूपेभ्यः (नमः) (च) (सेनानिभ्यः) सेनान्नयन्तीति सेनान्यः तेभ्यः (वः) (नमः) नमः (रतिभ्यः) रथा येषां तेरथिनस्तेभ्यः (नमः) नमः (च) (अरथेभ्यः) रथवर्जिता योद्धारस्तेभ्यः (वो नमः) नमः । (क्षतृभ्यः) रथा नामधिष्ठातारस्तेभ्यः (नमः) (च) संगृहीतृभ्यः) संग्रहीतारः सारथयस्तेभ्यः (वो नमः) नमः (महद्भ्यः) जातीविद्यादिभिरुत्कृष्टास्तेभ्यः (च) (अभंकेभ्यः) प्रमाणादिभिरल्पास्तेभ्यः (वो नमः) नमः ।।२६।।

भावार्थ—सेनारूपके निमित्त नमस्कार है, सेनापतिरूप आपके निमित्त नमस्
है, प्रशंसित रथवालोंके निमित्त नमस्कार है, रथहीन आपके निमित्त नमस्कार है, र
अधिष्ठातृके अंतरमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, और सारथियोंके अन्तरमें स्थित वा
सामग्री ग्रहणकर्ता आपके निमित्त नमस्कार है, जाति, विद्या और ऐश्वर्यमें उत्कृष्ट पू
रूपके निमित्त नमस्कार है, प्रामाणादि अल्परूप आपके निमित्त नमस्कार है ॥२६॥

मन्त्रः

नमस्तक्षंभ्योरथकारेभ्यंश्चवोनमोनमःकुलालेभ्य
कर्मारेभ्यश्चवोनमोनमोनिषादेभ्यः पुञ्जिष्टेभ्य
श्चवोनमो नमः श्वनिभ्योमृगयुभ्यंश्चवोन
मोनमःश्वभ्यः ॥ २७ ॥

ॐ नमस्तक्षभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । निच्यृच्छक्व
छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २७ ॥

भाष्यम्–(तक्षभ्यः) तक्षाणः शिल्पजातयस्तेभ्यः (नमः) नमः (च) रथकारे
रथं कुर्वन्तीति रथकारास्तेभ्यः (वः) (नमः) नमः (कुलालेभ्यः) कुंभकारेभ्यः (नम
नमः (च) कर्मारेभ्यः लोहकारेभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु (निषादेभ्यः) भिल्लेभ्यः (नम
नमः (च) (पुञ्जिष्ठेभ्यः) पुक्कसादिभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु (श्वनिभ्यः) शुनो न
न्तीति श्वन्यस्तेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (च) (मृगयुभ्यः) मृगान् कामयन्त इति लुब्ध
स्तेभ्यः (वो नमः) नमोऽस्तु ॥२७॥

भावार्थ—काष्ठकी शिल्प विद्याके जाननेवालोंमें व्याप्तके निमित्त नमस्कार,
विमान रथ निर्माणकारी उत्कृष्ट तक्षाके अन्तरमें स्थित आपको नमस्कार है, प्रशं
मृत्तिकाके पात्र बनानेवालोंमें स्थितके निमित्त नमस्कार , और लोहेके शस्त्र बनानेवाल
स्थितके निमित्त नमस्कार है, गिरिचारी भील आदिमें स्थित रुद्रके निमित्त नमस्क
और पक्षिघातक पुल्कस आदि वा संकीर्ण जातियोंके अन्तरमें स्थित व्याप्त आपके निमि
नमस्कार है, कुत्तोंके गलेमें रस्सी बांधकर धारण करनेवालोंके अन्तरको जाननेवा
निमित्त नमस्कार है, मृगोंकी कामनावाले व्याधोंके अन्तर स्थित आपको नमस्कार है॥२

मन्त्रः

नमः॑ श्वभ्य॑: श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ भवाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑: श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च॒ नम॑: कप॒र्दिने॑ ॥ २८ ॥

ॐ नमः श्वभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । आर्षी जगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २८ ॥

भाष्यम्—(श्वभ्यः) कुक्कुररूपेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (श्वपतिभ्यः) श्वपालकेभ्यः (वः) युष्मभ्यम् (नम;) नमोऽस्तु इत उत्तरं रुद्रनामानि (च) भवाय भवन्ति उत्पद्यन्ते जन्तवोऽस्मादिति भवस्तस्मै (नमः) नमोस्तु (च रुद्राय) रु दुःखं द्रावयतीति रुद्रस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (शर्वाय) पापहारिणे (नमः) नमोस्तु (च) (पशुपतये) जीवानां पालकाय वा अज्ञान् पाति क्षतीति पशुपतिस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (नीलग्रीवाय) नीला श्यामा ग्रीवा यस्य स तस्मै (शितिकण्ठाय) शितिः श्वेतः कण्ठो नीलातिरिक्तभागो यस्य शितिकण्ठस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥२८॥

भाषार्थ—कुक्कुरोंके अन्तरमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, कुक्कुरोंके अधिपति किरातोंके अन्तरमें स्थित आपके निमित्त नमस्कार है, (यह पूजावाचक श्वः–शब्द है, उभयतो नमस्कार वाले मंत्र पूर्ण हुए । अब नमस्कारोपक्रम मंत्र लिखते हैं) और जिनसे सब जगत् उत्पन्न होता है उनके निमित्त नमस्कार है, दुःख दूर करनेवाले देवके निमित्त नमस्कार है और पापके नाश करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, प्राणियोंके अधिपतिके निमित्त नमस्कार है, नीलवर्ण ग्रीवावाले अथवा नीलवर्ण आकाशमें उदित सूर्य्यमें स्थितके निमित्त नमस्कार है नीलकण्ठवाले वा मेघसहित आकाशमें उदित हुए सूर्य्यके अन्तर में स्थितके निमित्त नमस्कार है ॥२८॥

मन्त्रः

नम॑: कप॒र्दिने॑ च॒ व्यु॑प्तकेशाय च॒ नम॑: सहस्रा॒क्षाय॑ च श॒तध॑न्वने च ॥ नमो॑ गिरिश॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च॒ नमो॑ ह्र॒स्वाय॑ ॥ २९ ॥

ॐ नमः कपर्दिन इत्यस्य कुत्स ऋषिः भुरिगतिजगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ २९ ॥

भाष्यम्-(कपर्दिने) जटाजूटधारिणे (नमः) नमोऽस्तु (च) (व्युप्तकेशाय) मुण्डितकेशाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (सहस्राक्षाय) बहुनेत्राय (च) (शतधन्वने) बहुधन्वने (नमः) नमोस्तु (च) गिरिशयाय) गिरौ शेते गिरिशयस्तस्मै (च) (शिपि) विष्टाय विष्णुरूपाय यद्वाः-शिपिषु पशुषु विष्टः प्रविष्टः 'पशवो वै शिपिः' इति श्रुतेः (च) (मीढुष्टमाय) सेक्तृप्तमाय यूने परिणामहीनाय (च) (इषुमते) शरयुक्ताय (नमः) नमोऽस्तु ॥२९॥

भाषार्थ—जटाजूटधारीके निमित्त भी नमस्कार है, मुण्डित केशके निमित्त नमस्कार है, और सहस्रलोचन इन्द्ररूपके निमित्त नमस्कार है, बहुत धनुष धारण करनेवाले के निमित्त नमस्कार और सब प्राणियोंके अन्तर व्यापक विष्णुरूपके निमित्त नमस्कार है, ("विष्णुः शिपिविष्टः" इति श्रुतेः । अथवा पशवो वै शिपिः इति श्रुतेः) वसुगणोंमें व्याप्त के निमित्त नमस्कार है, (अथवा यज्ञो वै शिपिः) यक्षमें अधिष्ठातृ देवतारूपसे प्रविष्ट अथवा शिपिः आदित्य मंडलमें स्थित ("शिपयोऽत्ररश्मय उच्यन्ते तैराविष्टो भवति" इति) के निमित्त नमस्कार है और तृप्तिकर्ता मेघरूपसे तृप्तिकर्ता वा चार पदार्थोंकी वर्षा करनेवालेके निमित्त और वाणधारीके निमित्त नमस्कार है ॥२९॥

मन्त्रः

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च नमऽ आशवे ॥ ३० ॥

ॐ नमो ह्रस्वायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३० ॥

भाष्यम्-(ह्रस्वाय) लघुप्रमाणकः ह्रस्वःतस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वामनाय) संकुचितावयवाय (च) (बृहते) बृहन् प्रोढाङ्गस्तस्मै (च) (वर्षीयसे) वर्षीयानतिशयेन वृद्धस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वृद्धाय) वृद्धो वयसाधिकस्तस्मै (च) (सवृधे) वर्धन्ते विद्याविनयादिगुणैस्ते वृधः पण्डिताः क्विप तैः सह वर्तत इति सवृत् तस्मै (नमः) नमोस्तु (च) अग्र्याय जगतामग्रे भव अग्र्यस्तस्मै (च) (प्रथमाय) मुख्याय (नमः) नमोऽस्तु ॥३०॥

भावार्थ—अल्प शरीरके निमित्त भी नमस्कार है। और संकुचित अवयवमें व्याप्तके निमित्त नमस्कार है, प्रौढाङ्गके निमित्त नमस्कार है, अतिवृद्धिके निमित्त नमस्कार है, अवस्थामें अधिकके निमित्त नमस्कार है, विद्याविनय आदि गुणमुक्त पंडितोंके साथ वर्तनेवालेयुवाके निमित्त नमस्कार है, और मुख्य सब जगत्‌में प्रथम प्रादुर्भाव होनेवाले के निमित्त नमस्कार है, सबमें प्रथम गुख्यके निमित्त नमस्कार है ।।३०।।

विशेष—आशय यह कि जब सृष्टि नहीं थी तब आप सबसे प्रथम और अग्र्य कहे जाते हैं आपको नमस्कार है ।।३०।।

मन्त्रः

नमंऽआशवेंचाजिरायंचनमंःशीघ्र्यांयचशीभ्यांय - चनमऽऊर्म्यांयचावस्वन्यायचनमोंनादेयायंचद्वीप्यां यच ॥ ३१ ॥

ॐ नमः आशव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । स्वराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३१ ॥

भाष्यम्–(आशवे) जगद्व्यापिने (च) (अजिराय) गतिशीलाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (शीघ्र्याय) वेगवद्वस्तुनि भवः शीघ्र्यः तस्मै (च) (शीभ्याय) शीभते कत्थते इति शीभ आत्मश्लाघी पचाद्यत् तत्र भव इति छान्दसो यत्प्रत्ययः । शीभो जलप्रवाहो वा शीभाक्षियो वा तत्र भवाय (नमः) नमोऽस्तु (च) (ऊर्म्याय) कल्लोलेषु भवः ऊर्म्य तस्मै (च) (अवस्वन्याय) अर्वाचीनं गच्छन् उदकस्य स्वनो ध्वनिः आवस्वनः तत्र भवाय (नमः) नमः (च) (नादेयाय) नद्यां भवो नादेयस्तस्मै (च) (द्वीप्याय) द्वीपे भवो द्वीप्यस्तस्मै नमः नमोऽस्तु ।।३१।।

भावार्थ—जगत्-व्यापकके निमित्त भी नमस्कार है, अतिशीलके निमित्त सर्वत्रव्याप्तके निमित्त नमस्कार है, और वेगवाली वस्तुओंमें विद्यमान और जलप्रवाहमें विद्यमान आत्मश्लाघी वा आत्मरूपके निमित्त नमस्कार है, जलतरंगमें होनेवाले और स्थिर जलोंमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, नदीमें होनेवालेके निमित्त और द्वीप अर्थात् टापूमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ।।३१।।

गूढार्थ—प्राणोंके पुष्ट करनेवाले अन्तःकरण चतुष्टयके पुष्ट करनेवाले शीघ्रगमनादि सुखकी प्राप्तिकी लहरें शब्दादिका सुनना, शब्द करना इत्यादि शक्तियोंके दाता आपको नमस्कार है, द्वीप द्वीपान्तरोंकी शक्ति देनेवाले आपको नमस्कार है ।।३१।।

मन्त्रः

नमो॑ ज्ये॒ष्ठाय॑ च कनि॒ष्ठाय॑ च॒ नमः॑ पूर्व॒जाय॑ चापर॒जाय॑ च॒ नमो॑ मध्य॒माय॑ चापग॒ल्भाय॑ च॒ नमो॑ जघ॒न्या॑य च॒ बुध्न्या॑य च॒ नमः॑ सो॒भ्या॑य ॥ ३२ ॥

ॐ नमो ज्येष्ठायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३२ ॥

भाष्यम्–(ज्येष्ठाय) अत्यन्तं प्रशस्यो ज्येष्ठस्तस्मै (च) (कनिष्ठाय) अत्यन्तं युवाऽल्पो वा कनिष्ठस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (पूर्वजाय) पूर्वं जगदादौ हिरण्यगर्भरूपेणोत्पन्नः पूर्वजस्तस्मै (च) (अपरजाय) अपरस्मिन्कालेप्रलये कालाग्निरूपेण जातः अपरजस्तस्मै (नमः) नमः (च) (मध्यमाय) मध्ये भवो मध्यमस्तस्मै देवतिर्यगादिरूपणे (अपगल्भाय) अव्युत्पन्नेन्द्रियरूपाय, वा एकगर्भान्तरितोऽपगल्भस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (जघन्याय) जघनं गवादीनां पश्चाद्भागस्तत्र भवो जघन्यस्तस्मै (च) (बध्न्याय) बुध्ने वृक्षादिमूले भवो बुध्न्यस्तस्मै (नमः) नमोस्तु ।।१।।

भावार्थ—अति प्रशस्य ज्येष्ठरूपके निमित्त और अतियुवा वा कनिष्ठरूपके निमित्त नमस्कार है, (अर्थात् सृष्टिके आरंभमें जो प्रथम उत्पन्न हुआ तिसके अन्तरमें भी विद्यमान और उसके पीछे जो कुछ हो रहा है उस सबके हृदयमें भी विद्यमान होने से ज्येष्ठ कनिष्ठरूप है) और जगत्‌के आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे उत्पन्न और प्रलयकालमें कालाग्निरूपसे होनेवालेके निमित्त नमस्कार है। और सृष्टि संसारके अनन्तर देवतिर्यगादिरूपसे होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, (अर्थात् प्रथम गर्भाधानमें बालकके रक्षकरूपँसेउस बालकके आत्माका आत्मा कठोर गर्भमें वास करके उस बालकके साथ ही उत्पन्न होता है तिसके उपरान्त गर्भाधान भी और गर्भमें भी इसी प्रकार इसको प्रथम द्वितीय तथा संपूर्ण ही सन्तान कहा जाता है) और अप्रगल्भ अव्युत्पन्न इंद्रिय प्रकाश रहित अण्डरूपके निमित्त नमस्कार और गवादिके पश्चाद्भागमें होनेवाले स्वेदज कृमि कीट आदिमें वर्तमानके निमित्त नमस्कार है, तथा वृशादिके मूलमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ।।३२।।

विशेष–यह अवयव विधायक नमस्कार है ।।३२।।

मन्त्रः

नमः॑ सो॒भ्या॑य च प्रतिस॒र्या॑य च॒ नमो॒ याम्या॑य च॒ क्षे-

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च नमो वन्याय च ॥ ३३ ॥

ॐ नमः सोभ्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३३ ॥

भाष्यम्–(सोभ्याय) सोभं गन्धर्वनगरं तत्र भवस्तस्मै यद्वा सोभ्यः उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां सहितः मनुष्यलोकस्तत्र भवः सोभ्यस्तस्मै (च) (प्रतिसर्य्याय) प्रतिसरो विवाहोचितं हस्तसूत्रमभिचारो वा तत्र भवस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (याम्याय) पापिनां नरकार्तिदाता तस्मै (च) (क्षेम्याय) क्षेमे कुशले भवः क्षेम्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (श्लोक्याय) श्लोका वैदिकमंत्रा यशो वा तत्र भवः श्लोक्यस्तस्मै (च) (अवसान्याय) अवसानं समाप्तिर्वेदान्तो वा तत्र भवः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (उर्वर्य्याय) उर्वरा सर्वसस्याढया भूमिस्तत्र धान्यरूपेण भवस्तस्मै (च) (खल्याय) खलो धान्यविवेचनदेशस्तत्र भवस्तस्मै (नमः) नमोस्तु ॥३३॥

भावार्थ––गन्धर्वनगरमें होनेवाले अथवा पुण्यपाप सहित वर्तमान मनुष्य लोकमें होनेवाले ("पुण्येन पुण्यलोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यां मनुष्यलोकम्" इति) अथवा पृथिवी लोकमें उत्पन्न होनेके समय जन्मे बालकके अन्तर देवतारूपके निमित्त भी नमस्कार है, और विवाहादि कार्यमें हाथमें बाँधे मंगलसूत्रमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है । और पापियोंको दुःख देनेको यममें वर्तमान और कुशलमें होनेवाले वा परलोक गये हुए प्राणीके कल्याणमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, और इस संसारमें यश प्रचारके कारण भूत वा वैदिक मंत्ररूपी यज्ञमें होनेवालेको और वेदान्तमें स्थित वा जिसके प्रसादसे प्राणी जन्म मृत्युसे छुटकारा पाता है उसके निमित्त नमस्कार है, उपजाऊ भूमिमें उत्पन्न हुए धान्यादिके अन्तरमें भी विद्यमानके निमित्त नमस्कार है और धान्य विवेचन देशमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ॥३३॥

मन्त्रः

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च नमो बिल्मिने ॥ ३४ ॥

ॐ नमोवन्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ।। ३४ ।।

भाष्यम्–(वन्याय) वने वृक्षादिरूपेण भवो वन्यस्तस्मै (च) (नमः) नमोस्तु (च) (कक्ष्याय) कक्षं तृणं वल्ली वा तत्र भवः कक्ष्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (श्रवाय) शब्दरूपाय (च) (प्रतिश्रवाय) प्रतिशब्दरूपाय (नमः नमोऽस्तु) (च) (आशुषेणाय) आशु शीघ्रा सेना यस्य सः तस्मै (च) (आशुरथाय) शीघ्रो रथो यस्य सः आशुरथस्तस्मै (नमः) नमः (च) (शूराय) युद्धधीराय (च) अवभेदिने अवभेदी अर्वाचीनं भेत्तु शीलमस्येति अवभेदी तस्मै (नमः) नमोस्तु ।।३४।।

भावार्थ—वनमें वृक्षादिरूपसे होनेवालेके निमित्त वा घरमें विद्यमानको भी नमस्कार है, और तृणवल्लीमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, शब्दरूप वा ध्वनिमें वर्तमानके निमित्त नमस्कार है, और प्रतिध्वनिमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, शीघ्र चलनेवाली सेनाकी श्रेणीमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, और शीघ्र चलनेवाले रथोंकी श्रेणीमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, युद्ध विशारदोंके हृदयमें विद्यमानके निमित्त, और शत्रुका हृदय वेधनेवाले शस्त्रमें भी विद्यमानके निमित्त नमस्कार है ।।३४।।

मन्त्रः

नमो॑बि॒ल्मिने॑चकव॒चिने॑च॒नमो॑व॒र्म्मिणे॑चव॒रू॒थिने॑च॒नम॑÷श्रु॒ताय॑चश्रु॒तसे॒नाय॑च॒नमो॑दु॒न्दु॒भ्या॑यचाहन॒न्या॑यच॒नमो॑धृ॒ष्णवे॑ ॥ ३५ ॥

ॐ नमो विल्मिन इत्यस्य कुत्स ऋषिः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ।। ३५ ।।

भाष्यम्–(बिल्मिने) बिल्ममस्यास्तीति बिल्मी, बिल्मं शिरस्त्राणमस्यास्तीति बिल्मी तस्मै (च) (कवचिने) पटस्यूतं कर्पासगर्भं देहरक्षकं कवचं तदस्यास्तीति तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वर्मिणे) लोहमयं शरीररक्षकं वर्म तदस्यास्तीति तस्मै (च) (वरूथिने) वरूथः रथगुप्तिर्वा सोऽस्यस्तीति वरूथी तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (श्रुताय) प्रसिद्धाय (च) (श्रुतसेनाय) श्रुता प्रसिद्धा सेना यस्य स श्रुतसेनः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (दुन्दुभ्याय) दुन्दुभौ भवः दुन्दुभ्यस्तस्मै (च) (आहनन्याय) आहनने भव आहनन्यः तस्मै (नमः) नमोस्तु ।।३५।।

भावार्थ—शिरस्त्राण धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, वा बेलपत्र धारणसे प्रसन्न होनेवालेके निमित्त नमस्कार है। और देहावरण स्यूत अंगरखा कवच धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, बख्तर धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, रथका गोपस्थान वा हाथीके ऊपरकी अम्बारीमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है। और प्रसिद्धके निमित्त नमस्कार है, प्रसिद्ध सेनावालेके निमित्त भी नमस्कार है, । और रणके बाजेमें विद्यमानके निमित्त और वाद्य साधन दंड होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ।।३५।।

भावार्थ–यह संसार बिल्वके तुल्य है, इसमें जलके तुल्य आपकी शीतल वेदवाणी है, आप कवचके समान मायासे ऐसे ढके हैं जिस प्रकार शरीर बख्तरसे आच्छादित होता है, सद्‌गुण सत्यविज्ञान धनादि सेनारूप हैं, जिससे पापादि शत्रु भागते हैं, आपका यश वेदादिमें बहुत प्रकारसे सुना है, इसीसे वेदको श्रुति कहते हैं वह दोषरूपी शत्रुके निवारण करनेकी सेना है, उसके शब्द दुन्दुभी हैं, जिस सेनासे पापादि शत्रुओंका हनन होंता है ऐसे आपके निमित्त नमस्कार है ।।३५।।

मन्त्रः

नमो॑धृ॒ष्णवे॑चप्प्रमृ॒शाय॑चनमो॑निष॒ङ्गिणे॑चेषुधि॒मते॑च॒नम॑स्ती॒क्ष्णेष॑वेचायु॒धिने॑च॒नम॑ः स्वायु॒धाय॑चसु॒धन्व॑नेच ॥ ३६ ॥

ॐ नमो धृष्णव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता वि० पू० ॥ ३६ ॥

भाष्यम्–(च) धृष्णवे धृष्णुः प्रगल्भः तस्मै (नमो) नमोऽस्तु (च) (प्रमृशाय) पंडिताय नमः (च) (निषङ्गिणे) खड्गयुताय (च) (इषुधिमते) तूणयुताय (नमः) नमोऽस्तु (च) (तीक्ष्णेषवे) तीक्ष्णा असह्या इषवो बाणा यस्य सः तीक्ष्णेषुस्तस्मै (च) (आयुधिने) आयुधधारिणे (नमः) नमोऽस्तु (च) (स्वायुधाय) शोभनायुधाय (च) (सुधन्वने) शोभनधनुषे (नमः) नमोस्तु ।।३६।।

भावार्थ—प्रगलभरूप अपने पक्षकी रक्षा करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, विचारशील पंडितरूप वा विपक्षदलन करनेवालेके निमित्त नमस्कार है। और खड्गधारीके निमित्त नमस्कार है, तरकसयुक्तके निमित्त नमस्कार है, तीक्ष्णबाणधारीके निमित्त और मुद्‌गरादि आयुध धारण करनेवालेके निमित्त नमस्कार है, शोभन आयुध, त्रिशूल, लोह शिलादि धारण करने वालेके निमित्त नमस्कार है। और पिनाक श्रेष्ठ धनुषधारीके निमित्त नमस्कार है ।।३६।।

मन्त्रः

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च नमः कूप्याय ॥ ३७ ॥

ॐ नमः स्रुत्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३७ ॥

भाष्यम्-(च) (स्रुत्याय) स्रुतिः नद्याः क्षुद्रप्रवाहस्तत्र भवः स्रुत्यस्तस्मै (च) (पथ्याय) पथि भवः पथ्यः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (काट्याय)काटे भवः काट्यः कुत्सितम् अटति काटःविषममार्गः तत्र भवः काट्यः तस्मै० (च) (नीप्याय नीचैर्गच्छन्त्यापो यत्र स नीपः निम्नभूमिः तत्र भवः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (कुल्याय) कुल्या अल्पा कृत्रिमा सरित् कुलेषु देहेषु वाऽन्तर्यामिरूपेण भवः कुल्यः तस्मै० (च) (सरस्याय) सरसि भवः सरस्यः त० (नमः) नमः (च) (नादेयाय) नद्यां भवो नादेयः तस्मै नदीजलरूपाय (च) (वैशन्ताय) वेशन्तोऽल्पतरः तत्र भवः वैशन्त तस्मै (नमः)नमोस्तु ।।३७।।

भाषार्थ—क्षुद्रमार्ग ग्रामकी बाटमें स्थितके निमित्त और राजमार्गमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, दुर्गम मार्गमें स्थितके निमित्त और पर्वतके नीचे भागमें स्थितके निमित्त नमस्कार है, नहरके मार्गमें स्थितके निमित्त वा देहोंमें अन्तर्यामी रूपसे स्थितके और सरोवरोंमें होने, वालेके निमित्त नमस्कार है, नदीमें जलरूपसे स्थित के निमित्त और अल्प, सरोवर गोष्पदादिके जलमें स्थितके निमित्त नमस्कार है ।।३७।।

गर्भितआशय-वेद ही सबके निमित्त सुगम मार्ग है, इसमें चलनेसे दुःखादि नहीं सताते कारण कि इसमें कंटक नहीं हैं । और छोटे बड़े सरोवररूप जो आश्रमोंका वर्णन है उनके द्वारा आप प्राप्त होते हो ।।३७।।

मन्त्रः

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्रयाय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो वात्याय ॥ ३८ ॥

ॐ नमः कूप्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३८ ॥

भाष्यम्-(च) (कूप्याय) कूपे भवः कूप्यः तस्मै (च) (अवटचाय) अवटे गर्ते भवः अवटचः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (वीध्र्याय) विशेषेण इध्रं निर्मलं शरदभ्रं तत्र भवो वीध्र्यः ।यद्वा-विगतं इध्रो दीप्तिर्यस्मात्स वीध्रीः घनागमः तत्र भवाय (च) (आतप्याय) आतपे भवः आतप्यः त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (मेघ्याय) मेघे भवः मेघ्यः तस्मै (च) (विद्युताय) विद्युति भवः विद्युत्यः त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (वर्ष्याय) वर्षे भवो वर्ष्यः त० (च) (अवर्ष्याय) अवर्षे भवोवर्ष्यस्तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ।।३८।।

भावार्थ—कूपमें होनेवालेके निमित्त और गर्तमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, और महाप्रकाश वा घोर अन्धकारमें स्थितके निमित्त और धूप वा प्रकाशमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है मेघमें होनेवालेके निमित्त और बिजलीमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है । और वर्षाकी धारामें स्थितके निमित्त, तथा वृष्टिके प्रदिबंधमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ।।३८।।

मन्त्रः

नमो॒ वात्या॑य च॒ रेष्म्या॑य च॒ नमो॑ वास्त॒व्या॑य च वा॒स्तु॒पाय॑ च॒ नमः॒ सोमा॑य च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑स्ता॒म्राय॑ चारु॒णाय॑ च॒ नमः॑ शु॒ङ्गवे॑ ॥ ३९ ॥

ॐ नमो वात्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । स्वराडार्षी पंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ३९ ॥

भाष्यम्-(च) और (वात्याय) वाते भवः वात्यः तस्मै० (च) (रेष्म्याय) रिष्यन्ते नश्यन्ति भूतान्यत्रेति रेष्मा प्रलयकालः तत्र भवः रेष्म्यः तस्मै (नमः) नमोस्तु (च) (वास्तव्याय) वास्तु गृहं तत्र भवः वास्तव्यः तस्मै (च) (वास्तुपाय) वास्तु गृहं पाति वास्तुपः तस्मै (नमः) नमोस्तु (च) (सोमाय) उमासहितः सोमस्तस्मै० (च) (रुद्राय) दुःखनाशकाय (नमः) नमोस्तु (च) (ताम्राय) उदयाद्रविरूपेण त० (च) (अरुणाय) अरुणरूपाय (नमः) नमोस्तु ।।३९।।

भाषार्थ—वायुप्रवाहमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है और प्रलयकी पवनमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है । वास्तुगृहमें होनेवालेके निमित्त और वास्तुगृहके पालने-

वालेके निमित्त नमस्कार है। चन्द्रमामें स्थितके वा उमासहितके निमित्त, और दुःखनाश रुद्ररूप वा अग्निरूपके निमित्त नमस्कार है। सायंकालके सूर्य्यमें स्थित के निमित्त प्रभा कालीन सूर्यमें स्थितके निमित्त नमस्कार है वा उदयकालीन ताम्र और उदयकालके उ रान्त कुछ रक्तरूप सूर्य्यमें स्थितके निमित्त नमस्कार है ।।३९।।

आशय–वायुआदिके परमाणुओंको एकत्र कर पंचीकरण रीतिसे इस संसार संपूर्ण वस्तुओंके रचनेवाले और सबके रक्षक सोम यव आदिके उत्पादक पापादि दो निवारणको भयानकरूप अग्निसे तप्तधातुके समान शुद्ध रजोगुणसे संसार उत्पादक निमित्त नमस्कार है ।।३९।।

मन्त्रः

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमो ऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥

ॐ नमः शङ्गव इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋषयः भुरिगतिशक्वरी छन्दः। रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४०

भाष्यम्–(शङ्गवे) शं सुखं गमयतीति शङ्गुः सुखरूपा गावो वाचो वेदरूपा यस्यो वा त० (च) (पशुपतये) प्राणिनां पालकाय (नमः) नमोस्तु (च) 'उग्राय) शत्रून्हन मुद्गूर्णयुधाय (च) (भीमाय) भीमः शत्रुभयोत्पादकः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च (अग्रे वधाय) अग्रे स्थितो हन्तीति अग्रेवधः त० (च) (दूरे वधाय) दूरे स्थितो हन्ती दूरेवधः त० (नमः) नमोस्तु (च) हन्त्रे हननकर्त्रे लोके यो हन्ति तद्रूपेण रुद्र एवहन त्यर्थः । (च) (हनीयसे) अतिशयहननकर्त्रे (नमः) नमोऽस्तु (च) (हरिकेशेभ्य (हरिता वर्णा केशा इव येषां तेभ्यः (वृक्षेभ्यः) कल्पतरुरूपेभ्यः (नमः) (च) (ताराय तारयति संसारमिति तारः तस्मै नमः (नमोस्तु) ।।४०।।

भाषार्थ—कल्याणरूप देववाणीवालेके निमित्त नमस्कार है,और प्राणियोंके पा कके निमित्त नमस्कार है, शत्रुओंके मारनेको कठिन आयुध उठायेकठिन अन्तःकरणवाले निमित्त और शत्रुभय उत्पादक भयानक दर्शनके निमित्त नमस्कार है,सन्मुखके शत्रुका व करनेवालेके निमित्त और दूरके शत्रुका वध करनेवालेके निमित्त नमस्कार है,मारनेवाले रूपमें स्थित स्थावर पदार्थके लयकारीके निमित्त नमस्कारहै और अतिशयहन्ता सदा मृत्युका अभाव करनेवालेके निमित्त नमस्कार है हरे पत्तेरूप केशवाले कल्पतरुरूपके निमि नमस्कार है, संसारके तारनेवाले ॐकाररूपके निमित्त नमस्कार है ।।४०।।

मन्त्रः

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मय-
स्करायं च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥

ॐ नमः शम्भवायेत्यस्यपरमेष्ठी ऋषिः। रुद्रो देवता।
वि० पू० ॥ ४१ ॥

भाष्यम्--(शम्भवाय) शं भवत्यस्मादिति शम्भवः ।यद्वा-शं सुखरूपश्चासौ भवः संसाररूपश्च मुक्तिरूपो भवरूपश्च आनन्दविज्ञानघनरूपश्च तस्मै (नमः) नमोऽस्तु (च) (मयोभवाय) सुखरूपाय (च) (शंकराय)शं करोतीति शंकरः लौकिकंसुखकराय (नमः) नमोऽस्तु (च) (मयस्कराय) मयः मोक्षसुखं करोतीति मयस्करस्तस्मै (च) (शिवाय) कल्याणरूपाय (नमः) नमः (च) (शिवतराय) निर्विकाराय निरतिशयसर्वबीजाय भक्तानपि निष्पापान् करोतीत्यर्थः । तस्मै (नमः) नमोस्तु ॥४१॥

भाषार्थ—इस लोकके कल्याणकारी जिनसे सुख होता है अथवा सुखरूप, संसार रूप और मुक्तिरूपके निमित्त नमस्कार है, संसारसुखदाता पारलौकिक कल्याणके आका-रके निमित्त नमस्कार है, लौकिकसुख करनेवालेके निमित्त नमस्कार है और मोक्षसुख करने वालेके निमित्त नमस्कार है, कल्याणरूप निष्पापके निमित्त नमस्कार है और भक्तोंके अत्यन्त कल्याणकारक तथा निष्पाप करनेवालेके निमित्त नमस्कार है।

विशेष—स्रक्चंदनादि रूपसे लौकिकसुख शास्त्रज्ञानसे मोक्षसुख देनेवाले हैं ॥४१॥

मन्त्रः

नमः पार्य्याय चावार्य्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणा-
य च नमस्तीर्त्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्या-
य च नमः सिकत्त्याय ॥ ४२ ॥

ॐ नमः पार्य्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋषयः।
निच्यृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। रुद्रो देवता। वि० पू० ॥४२॥

भाष्यम्–(च) (पर्याय) पारे भवः पार्यः संसाराब्धेः परतीरे जीवन्मुक्त रूपे वा भवः पार्यः त० (च) (अवार्य्याय) अर्वाक्तीरे संसारमध्ये संसारित्वेन भव आवार्य्य त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (प्रतरणाय) प्रकर्षेण मंत्रजपादिन पापतरणहेतुर्वा प्रतर येन प्रतरणं नौकादि लघुद्रव्यं तत्र भवः त० (च) (उत्तरणाय) उत्कृष्टेन तत्त्वज्ञाने संसारतरणहेतुरुत्तरणं वा उत्तरति अनेनेत्युत्तरणं तीरः तत्र भवः त० (नमः) (च (तीर्थ्याय) तीर्थे प्रयागादौ भवः तीर्थ्य त० (च) (कूल्याय) कूले तटे भवः कूल्यः त (नमः) नमोऽस्तु (च) (शष्प्याय) शष्पे शरतृणे भवः शष्प्यः तस्मै (च) (फेन्याय) फेने भवः फेन्यः तस्मै (नमः) नमोस्तु ।।४२।।

भाषार्थ––समुद्रके पारमें भी विद्यमान अथवा संसारसागरके परंपारमें जीवन्मुक्त रूपसे वर्त्तमानके निमित्त और सागरके इस पारमें भी विद्यमान वा संसारमध्यवर्ति निमित्त नमस्कार है, जहाजमें विद्यमान वा अतिमंत्र जपादिसे पापके तारनेके कारण निमित्त और डोंगेमें भी विद्यमान वा उत्कृष्ट तत्त्वज्ञानसे संसारसागरके पार करनेवाले निमित्त नमस्कार है, सागर आदिक गर्भमें वा तीर्थ प्रयाग पुष्करआदिमें विद्यमानके निमित्त और जलप्रणाली वा किनारोंमें प्रगट होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, गंगादिके तटमें उत्पन्न कुश अंकुरादिमें विद्यमानके निमित्त और सागरादिके फेनमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है ।।४२।।

मन्त्रः

नमः॑ सिक॒त्त्याय च प्रवा॒ह्याय च॒ नमः॑ किꣳशि॒लाय॑ च क्षय॒णाय॑ च॒ नमः॑ कप॒र्दिने॑ च पुल॒स्तये॑ च॒ नमः॑ऽइरि॒ण्याय च प्रप॒त्थ्याय च॒ नमो॒ व्व्रज्ज्याय ॥ ४३ ॥

ॐ नमः सिकत्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवादय ऋषयः जगती छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४३ ॥

भाष्यम्–च (सिकत्याय) सिकतासु भवः सिकत्यः त० (च) (प्रवाह्याय) प्रवाहे स्रोतसि भवः प्रवाह्य त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (किꣳशिलाय) कुत्सिताःक्षुद्राः शिला शर्करारूपाः पाषाणा यत्र प्रदेशे स किंशिलः तद्रूपाय (च) (क्षयणाय) क्षियन्त्यस्मि न्नाप इति क्षणयस्त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (कर्पादने) जटाजूटयुक्ताय (च) (पुल स्तये)पुराऽग्रे तिष्ठति पुलस्तिः । यद्वा पूर्षु शरीरेषु अस्ति सत्ता यस्य स पुलस्तिः सर्वान्त

र्यामी त० (नमः नमोऽस्तु) (च) (इरिण्याय) इरिणे भवः इरिण्यः त० (च) (प्रपथ्याय) प्रकृष्टः पन्थाः प्रपन्थो बहुसेवितो मार्गस्तत्र भवः प्रपथ्यः त० (नमः) नमोऽस्तु ।।४३।।

भावार्थ—नदी आदिकी रेतीमें विद्यमान और नदी आदिके प्रवाहमें होनेवालेके निमित्त नमस्कार है, नदीआदिके भीतर वृक्षकंकरादिमें विद्यमान वा क्षुद्र पाषाणकी शर्करायुक्त स्थानमें स्थितके निमित्त और स्थिरजलमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है, जटाजूटयुक्त वा घूमतेहुए जलमें विद्यमान और पुरजलमें विद्यमान अथवा शरीरोंमें अन्तर्यामी रूपसे विद्यमानके निमित्त और तृणरहित ऊषरभूमिमें विद्यमान और बहुसेवित मार्ग व नालोंमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है ।।४३।।

मन्त्रः

नमो॒ व्रज्या॑य च॒ गोष्ठ्या॑य च॒ नम॒स्तल्प्या॑य च॒ गेह्या॑य च॒ नमो॑ हृद॒य्या॑य च निवे॒ष्प्या॑य च॒ नमः॒ काट्या॑य च गह्व॒रेष्ठा॑य च॒ नमः॑ शुष्क॒क्या॑य ॥ ४४ ॥

ॐ नमो व्रज्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ४४ ॥

भाष्यम्–(च) (व्रज्याय) व्रजे गोसमूहे भवः व्रज्यः त० (च) (गोष्ठयाय) गावस्तिष्ठन्ति यत्रेति गोष्ठः तत्रभवो गोष्ठयस्तस्मै० (नमः) नमोऽस्तु (च) (तल्प्याय) तल्पं शय्या तत्र भवस्तल्प्यः त० (च) (गेह्याय) गेहे भवो गेह्य : त० (नमः) नमोऽस्तु (च) हृदय्याय हृदये भवो हृदय्यो जीवस्त० (च) (निवेष्प्याय) निवेष्प्य आवर्तो नीहारजलं वा तत्र भवो निवेष्प्यः त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (काटयाय) काटे भवः काटयः काटः कूपः कुत्सितमटन्ति गच्छन्ति जना यत्र स काटो दुर्गारण्यदेशस्तत्र भवः त० (च) (गह्वरेष्ठाय) गह्वरे विषमे गिरिगुहादौ गम्भीरे जले वा तिष्ठतीति गह्वरेष्ठः त० (नमः) नमोस्तु ।।४४।।

भावार्थ—गोचरणस्थानमें विद्यमान और गोठमें विद्यमानके निमित्त नमस्कार है । शय्यामें विद्यमानके निमित्त और घरमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है, हृदयरमें जीवरूपसे स्थितके निमित्त और हिमसमूहमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है, दुर्गम मार्गमें विराजमानके निमित्त और गिरिगुहा वा गंभीरगुहा वा गंभीरजलमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है ।।४४।।

मन्त्रः

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाᳬसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमऽऊर्व्याय च सूर्व्याय च नमः पर्णाय ॥ ४५ ॥

ॐ नमः शुष्क्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋ० । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥४५॥

भाष्यम्–(च) शुष्क्याय शुष्के काष्ठादौ भवः शुष्क्यस्त० (च) (हरित्याय) आर्द्रे काष्ठादौ भवः हरित्यः त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (पांसव्याय) पांसुषु धूलिशु भवः पांसव्यः त० (च) (रजस्याय) रजसि गुणे परागे वा भवः रजस्यः त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (लोप्याय) लोपे भवः लोप्यः त० (च) (उलप्याय) उलपा बल्वजादितृणविशेषास्तेस्तत्र भवः उलप्यः त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (ऊर्व्याय) ऊर्व्यां भूमौ भवः ऊर्व्यः त० (च) (सूर्व्याय) शोभनः ऊर्व्यः कल्पानलः तत्र भवः तस्मै (नमः) नमोऽस्तु ॥४५॥

भावार्थ–सूखे काष्ठादिमें विराजमानके निमित्त और हरे पत्ते आदिमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है, धूरिमें विराजमानके निमित्त और रजोगुण वा पुष्पधूरीमें बिराजमानके निमित्त नमस्कार है, अगम्यदेशमें विराजमानके निमित्त और बल्वजादि तृणमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है, भूमि वा वडवानलमें विराजमानके निमित्त और महाप्रलयकी अग्निमें विराजमानके निमित्त नमस्कार है ॥४५॥

मन्त्रः

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नमऽउद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नमऽआखिदते च प्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नमऽआनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

ॐ नमः पर्णायेत्यस्य परमेष्ठी ऋ० स्वराट् प्रकृतिश्छन्दः रुद्रो देवता। वि० पू० ॥ ४६ ॥

भाष्यम्- (च पर्णाय) पत्ररूपाय (च) पर्णशदाय पतितपर्णायस्थानकर्त्रे (नमः) नमोऽस्तु (च) उद्गुरमाणाय उद्यमशीलाय (च) (अभिघ्नते) अभिहन्ति (शत्रूनित्या भिघ्नन् त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (आखिदते) आसमंतात् खिद्यते दैन्यं करोत्यभक्तान- मित्याखिदन् त० (च) (प्रखिदते) प्रकर्षेण खेदयति पापिनामिति प्रखिदन् त० (नमः) नमोऽस्तु (च) (इषुकृद्भ्यः) ये इषवो बाणान् कुर्वन्ति तेभ्यः (च) (धनुष्कृद्भ्यः) ये धनुष्कृतस्तेभ्यः (वः) (नमः) नमोऽस्तु वो युष्मदादेशात्प्रत्यक्षा एके रुद्रा तिस्रोऽशीतयो रुद्राः समाप्ताः ।एवं चत्वारिंशदधिकशतद्वयमन्त्रैरुद्रस्य सर्वात्मत्वमुक्तम् । इदानीं रुद्राणां हृदयभूतानामग्निवायुसूर्याणां सम्बन्धीनि यजूंसि उच्यन्ते (वः) युष्मभ्यम् (नमः) नमोऽस्तु केभ्यः (किरिकेभ्यः) कुर्वन्तीदं जगद्वृष्टयादिद्वारेणेति किरिकावाय्वग्निसूर्याः किभूतेभ्यः (देवानां हृदयेभ्यः) देवानामग्निवायुसूर्याणां हृदयभूता इत्यर्थः ! (नमः नमोऽस्तु (विचिन्वत्केभ्यः) विचिन्वन्ति पृथक्कुर्वन्ति धर्मकारिणं पापकारिणं चेति विचिन्वत्काः तेभ्यः (नमः) नमोऽस्तु (विक्षिणत्केभ्यः) विविधं क्षिण्वन्ति हिंसन्ति पापमिति विक्षिणात्कास्तेभ्योऽग्न्यादिभ्यो नमः (आनिर्हतेभ्यः) आ समन्तान्निर्गताः सर्गादौ लोकेभ्यः इत्यानिर्हतास्तेभ्यो नमः । हन्तिर्गत्यर्थः । ("तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतिँष्यजायन्ताग्निर्योयं पवते सूर्यः") इति श्रुते : ।।४६।।

भावार्थ-पर्णमें विद्यमानके निमित्त और पूर्णपतित पर्णस्थित देशरूप वा पर्ण उत्पन्न कीटादिमें भी विद्यमानके निमित्त नमस्कार है; निरन्तर उद्यमी उत्पन्न करनेवालेके निमित्त और शत्रुओंके संहारके निमित्त नमस्कार है, अभक्तोंको सदा दुःखदाता त्रिविध तापकेप्रे रकके निमित्त और त्रिविध तापके उत्पन्नकर्तावा पापियोंको अतिदुःखदायीके निमित्त नमस्कार है, बाणको उत्पन्न करनेवालेके निमित्त और धनुषके करनेवाले रुद्ररूप आपके निमित्त नमस्कार है (युष्मदादेशसे यह प्रत्यक्ष रूप है, यहां २४० पूर्ण हुए) (यहांतक रुद्रकी प्रधानता कहकर अब प्रधानभूत अग्नि वायुसूर्य्यादि रूपसे वर्णन करते हैं) प्रथम यजु १४ का और तीन सात अक्षरके व्याहृतिसंज्ञक हैं जो देवताओंके हृदयस्वरूप प्रधान अग्नि सूर्य्यके हृदयरूप वृष्टयादि द्वारा जगत्को सृजन करते हैं; ऐसे आपके निमित्त नमस्कार है, जो देवता देवताओंके हृदयस्वरूप हैं, जो वृष्टि आदिसें जगत्का पालन करते, जो धर्मात्मा और पापात्माओंको पृथक् करते हैं उन अग्नि, वायु और सूर्य्यके हृदयरूपके निमित्त नमस्कार है, विविधपापोंकी दूर करनेवाले अग्नि आदिके निमित्त नमस्कार है, अर्थात् जो देवताओंका हृदयस्वरूप विक्षिणत्क वृष्टि आदिसे जगत्का संहार करते हैं अग्नि वायु सूर्य्यके हृदयस्वरूप हैं उनके निमित्त बारबार नमस्कार है सृष्टिकी आदिमें होनेवाले रुद्रावतारोंके निमित्त नमस्कार है अर्थात् जो देवताओंका हृदयस्वरूप अनिर्हत "काल प्राप्त होनेसे स्वयं भीगुप्त हो जाता है" वा जो सृष्टिकी आदिमें होते ,हैं इससे आनिर्हत कहतेहैं जो अग्नि, वायु और सूर्य्यका भी हृदयस्वरूप है, उसको बार बार नमस्कार है ।।४६।।

मन्त्रः

द्रापेऽअन्धंसस्प्पते दरिंद्द्रनीललोहित ॥ आसाम्प्र-
जानांमेषाम्पंशूनाम्माभेर्म्मारोङ्ङ्मोचनःकिञ्चनाम-
मत् ॥ ४७ ॥

ॐ द्राप इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगार्षी बृहती छन्दः रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४७ ॥

भाष्यम्–(द्रापे) द्रा कुत्सायां गतौ च द्रापयतीति द्रापि पापकारिणां कुत्सितां गतिं नयतीत्यर्थः (अन्धसस्पते) सोमस्य पालक (दरिद्र) हे निष्परिग्रह (नीललोहित) कण्ठे नीलोऽन्यत्र लोहितः शिव (नः) अस्माकम् (आसाम् प्रजानाम्) पुत्रादीनाम् (एषाम्) (पशूनाम्) अस्मदीयानां गवादीनाम् (माभेः) मा भैषिः भयं मा कुरु (मा रोक्) भङ्गं मा कार्षीः (च) (किञ्चन) अपत्यादि (मा) (आममत्) मा भी मा रुग्णं कुरु ।।४७।।

भाषार्थ—हे पापियोंकी दुर्गति करनेवाले । हे सोमके पालक । अद्वितीय होनेसे सहायशून्य निष्परिग्रह हे नील और लोहित एक अंश नील दूसरा लाल शुक्ल कृष्ण उभयात्मक वा कंठमें नील अन्यत्र लोहित शिव । हमारे इन पुत्र पौत्रादि और इन पशुओंको मत भय करो तथा प्रजा पशुओंका भंग मत करो और किसी प्रकार भी हम तथा हमारी प्रजा पशुको मत रुग्ण करो सब प्रकार प्रजापशुमें मंगल करो ।।४७।।

मन्त्रः

इमारुद्द्रायंतवसैंकपर्द्दिनेंक्षयद्वीरायप्प्रभंरामहेमती६॥
यथाशमसंद्विपदेचतुंष्पदेव्विश्श्वंम्पुष्टङ्ग्ग्रामेंऽअस्मिन्न-
नातुरम् ॥ ४८ ॥

ॐ इमारुद्रायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । आर्षी जगती छं० । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ४८ ॥

भाष्यम्–(यथा) येन प्रकारेण (द्विपदे) पुत्रादये (चतुष्पदे) गवादिपशवे (शम्) सुखम् भवतु तथा (अस्मिन् ग्रामे) वासस्थाने (विश्वम्) सर्वं प्राणिजातम् (पुष्टम्) समृद्धम् (अनातुरम्) निरुपद्रवम् (असत्) भवत् तेन प्रकारेण वयम् (इमाः) अस्मदीया

(मतीः) बुद्धीः (तवसे) महते (कपर्दिने) जटिलाय (क्षयद्वीराय) क्षयन्तो निवसन्तो वीराः शूरा यत्र स क्षयद्वीरस्तस्मै क्षयन्तो नश्यन्तो वीरा रिपवो यस्माविति वा (रुद्राय) रुद्रदेवाय (प्रभरामहे)समर्पयामः ।।४८।।

भावार्थ—जिस प्रकार पुत्रादिमें गवादि पशुओंमें सुखकी प्राप्ति हो तथा इस ग्राम में संपूर्ण प्राणिसमूह पुष्ट उपद्रवरहित हों उसी प्रकार हम इन अपनी बुद्धियोंका महाबली जटिलशूरवीरोंके निवासभूत रुद्रदेवताके निमित्त ससर्पण करते हैं ।।४८।।

मन्त्रः

याते॑रुद्र॒शि॒वात॒नूः॒शि॒वाव्वि॒श्वाहा॑भेष॒जी॥शि॒वारु॒त-स्यं॑भेष॒जीतया॑नोमृडजी॒वसे॑ ॥ ४९ ॥

ॐ याते रुद्र इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । आर्ष्यनुष्टुप् छं० । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ४९ ॥

भाष्यम्–(रुद्र) हे शंकर (या) (ते) तव (शिवा) शान्ता (विश्वाहा) सर्वदा (शिवा) कल्याणकारिणी (भेषजी) औषधरूपा संसारव्याधिनिवर्तका तथा (रुतस्य) व्याधेः (शिवा) समीचीना (भेषजी) निवर्तकौषधिः (तनूः) शरीरमस्ति (तया) (तन्वा) शरीरेण शक्त्या वा (नः) अस्मान् (जीवसे) जीवतुम् (मृड) सुखय ।।४९।।

भाषार्थ—हे शंकर । जो आपकी शान्त निरंतर कल्याणकारिणी औषधिरूप संसार की व्याधि निवृत्त करनेवाली तथा शरीरव्याधिकी समीचीन औषधीरूप शरीर वा शक्ति-है उस शक्तिसे हमारे जीवनको सुखी करो ।।४९।।

भावार्थ—हे रुद्र ! तुम्हारी कल्याणरूपिणी जो तनू सबके कल्याणसाधनी जो सब रोगोंकी महौषधि है उस तनुक द्वारा हमको सुखी करो ।।४९।।

मन्त्रः

परि॑णोरु॒द्रस्य॑हे॒तिर्व्वृ॑णक्तु॒परि॑त्वे॒षस्य॑दु॒र्म्म॒तिर॑घा॒योः॥ अव॑स्थि॒रामघव॑द्भ्यस्तनुष्व॒मीढ्व॑स्तो॒काय॒तन॑याय -मृड ॥ ५० ॥

ॐ परिन इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋ० । आर्षी त्रिष्टुप् छं० । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५० ॥

भाष्यम्-(रुद्रस्य) शिवस्य (हेतिः) आयुधम् (नः) अस्मान् (परिवृणक्तु) परिवर्तयतु (त्वेषस्य) क्रुद्धस्य (अघायोः) पापशीलस्य (दुर्मतिः) दुष्टा मतिद्रोह श्चास्मान् (परि) परिवृणक्तु (मीढवः) सेक्तः (मघवद्भ्यः) मघं हविर्लक्षणं धनं विद्य येषां ते यजमानास्तदर्थः यजमानानां भयनिवृत्तये (स्थिरा) स्थिराणि दृढानि धनूंषि (अवतनुष्व)अवतारय ज्यारहितानि कुरु किञ्च (तोकाय) पुत्राय (तनयाय) पौत्राय (मृड) सुखय ॥५०॥

भावार्थ—रुद्रके संपूर्ण आयुध हमको परित्याग करें । पापियोंपर क्रोधित अर्थात् कोपन स्वभाव दण्डदेनेकी इच्छावाली दुर्मति हमको सब प्रकार त्याग करें । हे अभिलषि-तफलप्रद ! हविरूप धनसे युक्त यजमानोंके भय दूर करनेको दृढधनुषोंको ज्याहीन करो-हमारे पुत्र पौत्रादिको सुख दो ॥५०॥

मन्त्रः

मीढुंष्ट्मशिवंतमशिवोनंः सुमनांभव॥ परमेवृक्षऽआयुं-धन्निधायकृत्तिंव्वसानऽआचंरपिनांकम्बिभ्रदागहि॥५१

ॐ मिढुष्टम इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋ० । निचृ-दार्षी यवमध्या त्रिष्टुप् । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ५१ ॥

भाष्यम्-(मिढुष्टम) सेक्तृतम (शिवतम) हे अत्यन्तं कल्याणकर्तः (नः) अस्मा कम् (शिवः) शान्तः (सुमनाः) (हृष्टचित्तः भव) भवतु (परमे) दूरस्थे उन्नते वा (वृक्षे) वटादौ (आयुधम्) त्रिशूलादिकं (निधाय) संस्थाप्य (कृत्तिवसानः) चर्म परिदधानः सन् (आचर) आगच्छ तपश्चरेति वा (पिनाकम्) धनुः (बिभ्रत्) (आगहि) आगच्छ ज्याशरहीनं धनुर्मात्रं शोभार्थं धारयन्नागच्छेत्यर्थः॥५१॥

भावार्थ—हे अतिशय फलप्रदाता । हे अत्यन्त कल्याणकर्ता। हमको शान्त सुन्दर मनवाले हो दूरस्थित वा ऊँचे वृक्षपर अपना त्रिशूल रखकर मृगचर्म धारण किये आगमन कीजिये वा तप कीजिये, पिनाक धनुषको धारण किये आगमन करो अर्थात् ज्या और वाणोंसे हीन धनुष शोभाके निमित्त धारण किये आइये ॥५१॥

भावर्थ—भाव यह कि, संसाररूपी वृक्षपर पापोंके संहारकी शक्तिको फैलाकर कार्यकारिणी शक्तिसे वशकर हमारी रक्षा करो, इस मंत्रका तात्पर्य बड़ा गूढ है. इसमें संसारियोंके निमित्त शस्त्र है, मुमुक्षुओंके निमित्त अभय है इत्यादि तपस्वी महात्माओंके जानने योग्य है ॥५१॥

मन्त्रः

विकिरिद्रविलोहितनमस्तेऽअस्तुभगवः ॥ यास्तेसहस्रंहेतयोऽन्यमस्मन्निवपन्तुताः ॥ ५२ ॥

ॐ विकिरिद्रेत्यस्य परमेष्ठी प्र० ऋ० । आर्ष्यनुष्टुप् । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ५२ ॥

भाष्यम्–(विकिरिद्र) विविध घाताद्युपद्रवं द्रावयतीति विकिरिद्रः तत्सम्बुद्धौ हे विकरिद्र (विलोहित) विगतकलुषभाव (भगवः) हे भगवन् (ते) नमः (नमः) (अस्तु) अस्तु (या) (ते) (सहस्रं-हेतयः) असंख्यान्यायुधानि सन्ति (ताः) तानि (अस्मत्) (अन्यम्) अस्मद्व्यतिरिक्तम् (निपवन्तु) घ्नन्तु ॥५२॥

भाषार्थ—हे अनेक उपद्रव नाश करनेवाले । हे शुद्धस्वरूप भगवन् । आपके निमित्त नमस्कार हो तुम्हारे जो सहस्रों शस्त्र हैं वे हमको छोड़कर और कहीं उपद्रवियोंपर पडें (विलोहितका अर्थ अत्यन्त रक्तवर्ण संहारमूर्ति भी है) ॥५२॥

मन्त्रः

सहस्राणिसहस्रशोबाह्वोस्तवहेतयः ॥ तासामीशानो-भगवःपराचीनामुखाकृधि ॥ ५३ ॥

ॐ सहस्राणीत्यस्य परमेष्ठी प्रजा० ऋ० । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ५३ ॥

भाष्यम्–(भगवः) हे षड्गुणैश्वर्यसंपन्न (तव) (बाह्वोः) हस्तयोः (सहस्राणि) असंख्यातानि (सहस्रशः) सहस्रशः (हेतयः) आयुधानि सन्ति (ईशानः) जगन्नाथस्त्वम् (तासाम्) हेतीनाम् (मुखाः) मुखानि (पराचीनाः) अस्मत्तः पराङ्मुखानि (कृधि) कुरु ॥५३॥

भाषार्थ–हे भगवन् । षडैश्वर्यसंपन्न । आपकी भुजाओंमें बहुत प्रकारके सहस्रों खड्ग शूलादि आयुध हैं, जगत्के पति आप उन संहारकारी आयुधोंके मुख हमसे पराङ्मुख कीजिये ॥५३॥

भावर्थ–दृश्यादृश्य जितने बाहुयुगल हैं वह सबही उनके हैं वा सबहीमें उनकी सत्ता है आशय यह कि पापोंके द्वारा प्राणी दुःख पाते हैं आप उन पापोंको नीचें मुख कीजिये और हमको सुखी कीजिये ॥५३॥

मन्त्रः

असंङ्ख्यातासहस्रांणियेरुद्राऽअधिभूम्म्यांम् ।। तेषां
सहस्रयोजनेवधन्वांनितन्मसि ।। ५४ ।।

ॐ असंख्याता इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । विराड्
र्ष्यनुष्टुप्० । रुद्रो देवता । वि० पू० ।। ५४ ।।

भाष्यम्–(असंख्यातासहस्राणि) असंख्यातानि सहस्राणि अमितानि (ये
रुद्राः (भूम्याम्) भूमेः (अधि) उपरि स्थिताः (तेषाम्) रुद्राणाम् (धन्वानिं) धनूं
(सहस्रयोजने) सहस्राणि योजनानि यस्मिंस्तादृशे पथि सहस्रयोजनव्यवहिते मार्गे (अ
तन्मः) अवतारयामः ।।५४।।

भावार्थ—जो असंख्य सहस्रों रुद्र भूमिके ऊपर स्थित हैं, उनके धनुष सहस्र योज
दूर यह मंत्र पढ़कर प्रार्थनाके बलसे डालकर अभय होते हैं, इस मंत्रसे रुद्र का असंख्यत्व
असंख्य वस्तुमें एक रुद्रका व्यापकत्व सिद्ध हुआ ।।५४।।

मन्त्रः

अस्म्मिन्म्महत्यर्णवेन्तरिक्षेभगवाऽअधितेषां ँ
सह० ।। ५५ ।।

ॐ अस्मिन्नित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋ० । भुरिग
र्ष्युष्णि० । रुद्रो देवता । वि० पू० ।। ५५ ।।

भाष्यम्–(अन्तरिक्षस्था रुद्रा उच्यन्ते (अस्मिन्) अस्मिन् (महति) विश
(अर्णवे) अर्णांसि जलानि विद्यन्ते यत्र तदर्णवम् । मेघाधारत्वात् (अन्तरिक्षे) अन्त
(अधि) अधिष्ठित्य ये (भवाः) रुद्राः सन्ति तेषां धन्वान्यवतन्मसीति पूर्ववत् ।।५५।।

भावार्थ—अंतरिक्षके रुद्रोंका वर्णन करते हैं इस अंतरिक्षमें और बड़े सागर अथ
आकाश गंगा नामसे प्रसिद्ध नक्षत्रपुंज धाराप्रवाहमें आश्रय करके जो रुद्र स्थित हैं उ
संपूर्ण धनुष मंत्रबलसे सहस्रयोजन दूर ज्यारहित कर डालते हैं ।।५५।

गूढाशय—इस बड़े संसाररूपी समुद्रमें उत्पन्न हुए जीवोंके हृदय अन्तरमें जो ज्ञानयु
परमेश स्थित है उस असंख्यात फलदाताका विचार करो ।।५५।।

मन्त्रः

नीलंग्ग्रीवाःशितिकण्ठा दिवंꣳरुद्रा उपश्रिताः ॥

तेषां० ॥ ५६ ॥

ॐ नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापति० निच्यृदार्ष्यनुष्टुप्० रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ५६ ॥

भाष्यम्–द्युलोकस्थिता रुद्रा उच्यन्ते (नीलग्रीवाः) कृष्णकण्ठाः (शितिकण्ठाः) श्वेतकण्ठाश्च (रुद्राः) ये रुद्राः (दिवम्) द्युलोकम् (उपश्रिताः) उपरिस्थिताः तेषामित्यादि पूर्ववत ।।५६।।

भावार्थ––द्युलोक स्थित रुद्रोंका वर्णन । नीलग्रीवावाले श्वेतकंठवाले विषभक्षणसे कितनाएक कंठ श्वेत और कितनाएक नील अथवा निर्मल आकाश और मेघसहित आकाशमें चन्द्रतारादिमें वर्तमान जो रुद्र द्युलोकमें आश्रय किये हुए हैं उनके सब धनुष सहस्र योजन दूर मंत्रवलसे निक्षेप करते हैं ।।५६।।

मन्त्रः

नीलंग्ग्रीवाःशितिकण्ठाःशर्वाअधःक्षमाचराः ॥

तेषां० ॥ ५७ ॥

ॐ नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋ० । निच्यृदार्ष्यनुष्टुप् । रुद्रो दे० । वि० पू० ॥ ५७ ॥

भाष्यम्–पातालस्था रुद्रा उच्यन्ते (नीलग्रीवाः) कृष्णग्रीवाः (शितिकण्ठाः) श्वेतग्रीवाः ये (शर्वाः) रुद्राः (अधः) अधोभागे (क्षमाचराः) पाताले वर्तमानाः (तेषाम्) तेषामित्यादि पूर्ववत् ।।५७।।

भावार्थ—पाताल स्थित रुद्रोंका वर्णन । नीलीगर्दनवाले, श्वेतकंठवाले जो शर्वनामक रुद्र नीचे पातालमें स्थित हैं, उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर मंत्रबलसे निक्षेप करते हैं ।।५७।।

मन्त्रः

येवृक्षेषुशष्पिञ्जरानीलंग्ग्रीवाविलोहिताः॥तेषां०।५८।

ॐ ये वृक्षेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । रुद्रो देवता वि० पू० ॥ ५८ ॥

भाष्यम्—ये (शष्पिञ्जराः) शष्पा इव पिञ्जरवर्णाः हरितवर्णाः (नीलग्रीवाः) नीलकण्ठा : (विलोहिताः) विशेषेण रक्तवर्णाः विगतकळुषभावा वा (वृक्षेषु) अश्वत्थादिषु स्थिताः तेषामित्यादि पूर्ववत्। लोहितशब्देन धातव उच्यन्ते तेन त्वग्लोहितमज्जादियुक्ता इत्यर्थः ५८।।

भाषार्थ—जो हरितवर्ण नीलग्रीवावाले विशेष रक्तवर्ण अथवा तेजोमय शरीरवाले वृक्षोंमें अर्थात् पत्ते शाखा कोंपल आदिमें वर्तमान हैं, उनके संपूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर मंत्र बलसे निक्षेप करते हैं ।।५८।।,

मन्त्रः

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः तेषां०।५९।

ॐ ये भूतानामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापति० । आर्ष्यनुष्टुप्० । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ५९ ॥

भाष्यम्-(ये) रुद्राः (भूतानाम्) देवविशेषाणाम् (अधिपतयः) अन्तर्हितशरीराः सन्तो मनुष्योपद्रवकराभूतास्तेषां पालकाः (विशिखासः) शिखारहिता मुण्डा इत्यर्थः (कपर्दिनः) अन्ये जटाजूटयुताः तेषामित्यादिपूर्ववत् ।।५९।।

भाषार्थ—जो रुद्र देव विशेषोंके अधिपति हैं अर्थात् अन्तर्हित शरीर होकर मनुष्योंमें उपद्रव करनेवाले भूतोंके पालक हैं, तथा शिखाहीन मुण्डित शिर जो जटाजूटसे युक्त हैं, उनके संपूर्ण धनुष सहस्रयोजन दूर प्रक्षेप करते हैं ।।५९।।

मन्त्रः

ये पथाम्पथिरक्षय ऽऐलबृदा ऽआयुर्युधः ।।तेषां०।।६०।।

ॐ ये पथामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः रुद्रो देवता वि० पू० ॥ ६० ॥

भाष्यम्-(ये) ये रुद्राः (पथाम्) लौकिकवैदिकमार्गाणाम् (पथिरक्षयः) अधिपतयः तथा पथिरक्षसः (ऐलभृतः) इलानामन्नानां समूहः ऐलं ये बिभ्रति ते । यद्वा-इलपृथिवी तस्या इदमैलमन्नं तद्बिभ्रति ते ऐलभृतः अन्नैर्जन्तूनां पोषका इत्यर्थः । आयुर्युधः) यावज्जीवयुद्धकराः। आयुरेव जीवनं पाणौ कृत्य युध्यन्ति तेषामित्यादि पूर्ववत् ।।६०।।

भावार्थ—जो लौकिक वैदिक मार्गोंके अधिपति, मार्गोंके पालक, राज्य शासनकारी वा अन्नके धारक अथवा अन्नसे प्राणियोंको पुष्ट करनेवाले जीवनपर्यन्त युद्ध करनेमें रत हैं उनके सब धनुष सहस्रयोजन दूर निक्षेप करते हैं ॥६०॥

मन्त्रः

येतीर्त्थानिप्प्रचरन्तिसृकाहंस्तानिषङ्गिणः॑ ।तेषां॰।६१

ॐ ये तीर्थानीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । रुद्रो देवता । वि॰ पू॰ ॥ ६१ ॥

भाष्यम्–(ये) रुद्राः (सृकाहस्ताः) सृकेत्यायुधनाम सृका आयुधानि हस्ते येषां ते (निषङ्गिणः) निषङ्गा खड्गा हस्ते येषां ते (तीर्थानि)प्रयागकाश्यादीनि (प्रचरन्ति) गच्छन्ति तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥६१॥

भावार्थ—जो रुद्र आयुध विशेष (ढाल) हाथमें लिये तथा खड्ग धारण किये, काशीप्रयागादि तीर्थोंमें फिरते हैं वा जो तीर्थोंका तथा धर्मका प्रचार करते हैं, उनके संपूर्ण धनुष सहस्र योजन दूर निक्षेप करते हैं ॥६१॥

मन्त्रः

येन्नेषुव्विविद्ध्यन्तिपात्रेषुपिबंतोजनांन् ॥तेषां॰॥६२॥

ॐ येन्नेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवा ऋ॰ । विराडार्ष्यनुष्टुप् छं॰ रुद्रो देवता । वि॰ पू॰ ॥ ६२ ॥

भाष्यम्–(ये) रुद्राः (अन्नेषु)भुज्यमानेषु (जनान्) प्राणिजातान् (विविध्यन्ति) विशेषण ताडयन्ति धातुवैषम्यं कृत्वा रोगानुत्पादयन्तीत्यर्थः । तथा (पात्रेषु) पात्रस्थक्षीरोदकादिषु स्थिताः सन्तः (पिबतः) क्षीरादिपानं कुर्वतो जनान् विविध्यन्ति तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥६२॥

भावार्थ—जो रुद्र अन्नभोजन करनेमें प्राणियोंको विशेष करके ताडन करते हैं अर्थात् धातुकी विषमता कर रोगोंको उत्पन्न करते हैं, पात्रोंमें जल दूध आदि पीते हुए जनोंके कुत्सित जल आदिसे रोग प्रसिद्ध करते हैं, उनके संपूर्ण धनुषोंको सहस्रयोजन दूर निक्षेप करते हैं ॥६२॥

मन्त्रः

यऽएतावंन्तश्श्चभूयांᳪंसश्श्चदिशोंरुद्राविंतस्स्थिरे तेषां० ॥ ६३ ॥

ॐ य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता ऋषयः। निच्यृदार्ष्यनुष्टुप् छं०। रुद्रो देवता वि० पू० ॥ ६३ ॥

भाष्यम्–(च) (ये) (रुद्राः) रुद्राः (एतावन्तः) एतत्प्रमाणं येषां ते(च) (भूयांसः) अतिशयेन बहवो भूयांसः दिशः दश दिशः (वितस्थिरे) आश्रिताः दश दिशो व्याप्य स्थितास्तेषामित्यादि पूर्ववत् ॥६३॥

भावार्थ—और जो रुद्र इन दशों दिशाओंमें अथवा इतने और इन कहे हुओंसे भी अधिक संपूर्ण दिशाओंमें आश्रित हैं अर्थात् जिनके दर्शन हमको नहीं होते और जिनका दर्शन इन मंत्रोंमें नहीं हुआ उनके संपूर्ण धनुष सहस्रयोजनकी दूरीपर मंत्रबलसे निक्षेप करते हैं ॥६३॥

मन्त्रः

नमोंस्तुरुद्रेभ्योयेदिवियेषांव्वर्षमिषवः ॥ तेभ्योदशप्राचीर्दशंदक्षिणादशंप्प्रतीचीर्दशोदींचीर्दशोर्द्ध्वाः ॥ तेभ्योनमोंऽअस्तु तेनोंवन्तुतेनोंमृडयन्तुते यद्विष्ष्मो यश्चंनोद्वेष्टितमेषाञ्जम्भेंदध्मः ॥ ६४ ॥

ॐ नमोस्त्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः। निच्यृद्धृतिश्छन्दः रुद्रो देवता। वि० पू० ॥ ६४ ॥

भाष्यम्–त्रिलोकस्था रुद्रा उच्यन्ते–(ये) (रुद्राः) (दिवि) द्युलोके वर्तन्ते (येषाम्) रुद्राणाम् (वर्षम्) वृष्टिरेव (इषवः) शराः आयुधस्थानीया वृष्टिः (तेभ्यः) (रुद्रेभ्यः) (नमोऽस्तु) नमस्कारोऽस्तु (तेभ्यः) रुद्रेभ्यः (दश प्राचीः) दशसंख्याकाः प्राचीः प्रागभिमुखाः अङ्गुलीः कुर्वे इति शेषः। (दश दक्षिणाः) दक्षिणाभिमुखाः दशाङ्गुलीः कुर्वे (दशप्रतीचीः) प्रत्यङ्मुखाः दशाङ्गुलीः कुर्वे (दशोदीचीः) उदीचीः उदङ्मुखाः दशा-

ङ्गुली (दशोर्ध्वा) उपरि दशाङ्गुली : कुर्वे, अञ्जलिं बद्ध्वा सर्वदिक्षु नमस्करोमीत्यर्थः। (नमः) नमोऽस्तु (ते) रुद्राः (नः) अस्मान् (अवन्तु) रक्षन्तु (ते) (नः) अस्मान् (मृडयन्तु) सुखयन्तु (ते) रुद्राः (यम) पुरुषम् (द्विष्मः) द्वेषं कुर्मः (च) (यः) पुरुषः नः अस्मान् (द्वेष्टि द्वेषं करोति (तम्) पुरुषम् (एषाम्) पूर्वोक्तानां रुद्राणाम् (जम्भेन दंष्ट्राकराले मुखे (दध्मः) स्थापयामः । अस्मद्द्विषमस्यद्द्वेष्यं च नरं पूर्वोक्ता रुद्रा भक्षयतु अस्माञ्चावन्तु चेत्यर्थः ।।६४।।

भाषार्थ—जो रुद्र द्युलोकमें विद्यमान हैं, जिन रुद्रोंके वृष्टि ही बाण हैं उन रुद्रोंके निमित्त नमस्कार है, उन रुद्रोंके निमित्त पूर्वदिशामें दश अंगुली हो करके अर्थात् हाथ जोड़कर दक्षिणामें दश अंगुली होकर, पश्चिममें दशअंगुली होकर उत्तरमें दशअंगुली होकर ऊर्ध्वमें दशअंगुली अर्थात् कर जोड़कर प्रार्थना करता हूं, उनके निमित्त नमस्कार हो, वे रुद्र हमारी रक्षा करें, वे हमको सुखी करें वे रुद्र जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है उनको इन रुद्रोके गढ़में स्थापन करते हैं ।।६४।।

भावर्थ—जो देवता द्युलोकमें हैं जिनके बाण वृष्टि हैं अर्थात् वृष्टि द्वारा सृजन पालन और अतिवृष्टिसे संहार किया करते हैं, सब दिशाओंमें उनको हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं ।।६४।।

मन्त्रः

नमोऽस्तुरुद्द्रेब्भ्योयेऽन्तरिक्षेयेषाँव्वातऽइषवः ॥ तेब्भ्योदशप्प्राचीर्द्दशंदक्षिणादशंप्प्रतीचीर्द्दशोदीचीर्द्दशोर्द्ध्वाः ॥ तेब्भ्योनमो ऽ अस्तुतेनोवन्तुतेनोमृडयन्तुतेयन्द्दिष्ष्मोयश्श्चनोद्द्वेष्ष्टितमेषाञ्जम्भेदध्मः ॥ ६५ ॥

ॐ नमोऽस्त्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । धृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ६५ ॥

भाष्यम्—(रुद्रेभ्यः) रुद्रेभ्यः (नमोस्तु) नमस्कारोऽस्तु (ये) (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षे वर्तन्ते (येषाम्) रुद्राणाम् (वातः) वायुः (इषवः) आयुधस्थानीयः कुवातेनान्न विनाश्य वातरोगं वोत्पाद्य जनान् घ्नन्ति तेभ्योऽन्तरिक्षस्थेभ्यो रुद्रेभ्यो नमः। शेषं पूर्ववत् ।।६५।।

भाषार्थ—उन रुद्रोंके निमित्त नमस्कार हो, जो रुद्र अन्तरिक्षमें विद्यमान हैं जिनके बाण पवन हैं अर्थात् पवनद्वारा जो सृजन, पालन और आंधी आदिसे संहार करते हैं उनके निमित्त नमस्कार है, शेष पूर्ववत् ।।६५।।

मन्त्रः

नमौऽस्तुरुद्रेभ्योयेपृथिव्याँय्येषामन्नमिषवः॥ तेभ्यो-
दशप्प्राचीर्दशंदक्षिणादशं प्प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्द्ध्वाः
तेभ्योनमोऽअस्तुतेनोव्वन्तुतेनोमृडयन्तुतेयन्द्विष्मोयश्चनोद्वेष्टितमेषाञ्जम्भेदध्मः॥ ६६ ॥

इतिसंहितायांरुद्रपाठेपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ॐ नमोस्त्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । धृतिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वि० पू० ॥ ६६ ॥

भाष्यम्–(रुद्रेभ्यः) रुद्रेभ्यः (नमः) नमस्कारः (ये) रुद्राः (पृथिव्याम्) भूम्याम् वर्तन्ते (येषाम्) (इषवः) बाणाः (अन्नम्) अदनीयं वस्तु आयुधम् अयथान्न भक्षणे चौर्ये वा प्रवर्त्य रोगमुत्पाद्य जनान् घ्नन्ति तेभ्यो नमः तेऽस्मानवन्तु शेषम्पूर्ववत् ।।६६।।

भाषार्थ—उन रुद्रोंके निमित्त नमस्कार है, जो रुद्र पृथिवीमें स्थित हैं, जिनके बाण अन्न हैं जो अन्नद्वारा ही सृजन, पालन और मिथ्याहार विहारसे रोग उत्पन्न कर प्राणियोंका संहार करते हैं, उनके निमित्त नमस्कार है, शेष पूर्वके समान ।।६६।।

भावर्थ–जिस समय मनुष्यको रुद्रका सर्वभाव विदित हो जाय और उसकी दृष्टिमें यह भाव समाजाय कि, यह सबकुछ रुद्रद्वारा हो रहा है वही शंकर रुद्र नीललोहित कपर्दी आदि अनेकनामोंको कार्यानुसार धारणकर रहा है उसके सिवाय कुछ नहीं है तब वह अद्वैतनिष्ठ होता है और रुद्रकी महिमा को प्राप्त हो जीवन्मुक्त होकर विचरता है । इस प्रकार इस षोडश अध्यायमें रुद्रदेवताका संपूर्ण जगत्में अधिकार वर्णन किया है अर्थात् संपूर्ण जगत्में वह परमात्मा रुद्ररूपसे व्याप्त हैं कोई स्थान उससे भिन्न नहीं है इसी कारण स्थावर जङ्गम सबहीको प्रणाम किया है इष्ट अनिष्ट सब इसीके द्वारा होता है, त्रिलोकी उत्पत्ति पालन प्रलय सब रुद्रसे ही होती है, (एको रुद्रो न द्वितीयः) इस श्रुतिके अनुसार एक अद्वैत रुद्रका प्रतिपादन होता है, वेदानुसार उनकी उपासना करनी चाहिये, रुद्रकी उपासनासे सब उपद्रव दूर होकर चारों पदार्थोंकी प्राप्ति होती है इसका पाठ करनेसे सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ।।६६।।

इति श्री रुद्राष्टके पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य्य भाषाभाष्यसमन्वितपंचमोऽध्याय : ।।५।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

मन्त्रः

हरिः ॐ वयꣳसोमव्व्रतेतवमनस्तनूषुबिभ्रतः ॥ प्रजा-
वन्तꣳसचेमहि ॥ १ ॥

ॐ वयꣳसोम इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । गायत्रीछन्दः । सोमो
देवता । दक्षिणाग्न्युपस्थाने विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्–(सोम) हे सोमदेव (वय) बन्ध्वादयः |(तव व्रते) त्वदीयकर्मणि वर्त–
मानाः (तनूषु) त्वदीयेष्वङ्गेषु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिषु (मनः) मनः (बिभ्रतः) धार-
यन्तः (प्रजावन्तः) पुत्रपौत्रादिभिर्युक्ता सन्तः (सचेमहि) सङ्गच्छेमहि । (यजु० ३।५६)
॥१॥

भाषार्थ—हे सोम । (पितृयज्ञका सोमदेवता है "सोमायपितृमते स्वधा" इस मंत्रसे
हवि दी जाती है) हम यजमान तेरे व्रत संबंधिकर्ममें वर्तमान रूप आपके शरीरावयवमें
वा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिमें मन धारण करते वा लगाये हुए आपहीकी कृपासे पुत्रपौत्रा-
दिसे युक्त हुए हम सेवन करते हैं वा सदा तुम्हारे संबंधवाले हैं ॥१॥

मन्त्रः

एषतेरुद्रभागःसहस्वस्राम्बिकयातञ्जुषस्व स्वाहैषतेरु-
द्रभागऽआखुस्तेपशुः ॥ २ ॥

ॐ एषत इत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । प्राजापत्या बृहती छन्दः ।
रुद्रो देवता । अवदानहोमे विनियोगः ॥ २ ॥

भाष्यम्–(रुद्र) हे रुद्र (एषः) अस्माभिरुपकीर्यमाणोऽतिरिक्तः पुरोडाशः
तव (स्वस्रा) (भगिन्या) अम्बिकया अम्बिकानाम्न्या (सह) (भागः) भजनीयः स्वी-
स्वीकर्तुं योग्यः "अम्बिका ह वै नामास्य स्वसा" इत्यादिश्रुतेः। (तम) पुरोडाशम् (जुषस्व)
सेवस्व (स्वाहा) सुहुतमस्तु। अतः परमाखूत्किरं परिकिरति (रुद्र) हे रुद्र (एषः अस्माभि
रुपकीर्यमाणोऽतिरिक्तः पुरोडाशः (ते) तव (भागः) अंशः तथा (ते) तव (आखुः)
मूषकः (शुः) पशुत्वेन समर्पितः। आखुदानेन तुष्टो रुद्रस्तयाऽम्बिकया यजमानपशून्न मार-
यतीत्यर्थः । (यजु ० ३।५७)॥२॥

भावार्थ—विरोधियोंको, पापियोंको, अधर्मियोंको, अन्यायियोंको उनके कर्मका फल देकर रुलानेवाले हे रुद्रदेवता। तुम्हारी भगनी अम्बिकाके साथ यह हमसे दिया हुआ पुरोडाश स्वीकार करनेके योग्य है इस पुरोडाशको सेवन करो हे रुद्र। हमारे द्वारा अवकीर्ण (बखेरा) हुआ यह पुरोडाश तुम्हारे सेवनीय है तथा आपका बिल मध्यमें रहनेवाला मूसा (चूहा) रक्षणीय पशु है, इस कारण शेष भाग इसको भी देते हैं ।।२।।

विशेष—अम्बिका–नामकी रुद्रकी बहन है, उसके साथ रुद्रदेव विरोधियोंके मारनेकी इच्छा करते हैं, सो इस क्रूर देवता अम्बिकाके साथ उसे मारते हैं, वह अंबिका शरदरूप हो जरादिक उत्पन्नकर उस विरोधीको मारती है, रुद्र अम्बिकाकी उग्रता इस हविसे शान्त होती है। केवल तत्त्ववादी कहते हैं रुद्रशब्द मेघगर्जनादि कारण विद्युदग्नि विशेष है। अम्बिका शब्दका प्रकृत अर्थ गमनशील अर्थात् जगत् है यही शरद्‌रूपसे रुद्रकी भगिनी होकर कार्य साधन करती है। रुद्राध्यायमें मेघ ऋतु आदिमें भी रुद्रका निवास लिखा है, इससे यह भी हो सकता है मेघनिर्याण होनेसे शरऋतु प्राप्त होती है, वही उनकी भगिनीरूप है, प्राचीन कालमें शरदसे ही नवीनवर्ष प्रारंभ होता था और एक वर्ष बीतनेसे शरीरमें परिवर्तन होता है वही जरा है। अथवा शरदमें वर्षाके उपरान्त एक नवीन ज्वर प्रारंभ होता है जो बड़ा कष्ट करता है। इसको ही अम्बिकाकृत जरा कहते हैं, इसमें बहुधा मनुष्य असावधानीसे मृतक हो जाते हैं इसके निमित्त हवन अवश्य करना चाहिये और इन्हीं रोगोंकी शांतिके निमित्त चातुर्मासिके अंतर्गत यह भी हवन् है, उस समय भी शरत्कालमें नवदुर्गाओंमें जो हवन होता है वह अम्बिकादेवीका ही विधान है परन्तु घर घर होनेसे बहुत उपकार हो सकता है, इस मंत्रमें बड़ा गूढ तत्त्व है बुद्धिमान् इसमेंसे बहुत कुछ जान सकते हैं इस कारण दिग्दर्शन मात्र लिखा है ।।२।।

मन्त्रः

अवँरुद्द्रमंदीमह्यवँदेवन्त्र्यम्बकम् ॥ यथा नोव्वस्यंसस्करद्द्यथांनश्श्रेयंसस्करद्द्यथांनो व्व्यवसाययात्॥३॥

ॐ अवरुद्रमित्यस्य बन्धुर्ऋषिः। विराट् पंक्तिश्छन्दः। रुद्रो देवता। जपे विनियोगः ॥ ३ ॥

भाष्यम्–(रुद्रम्-अव) असौ रुद्र इति मनसा तम् अवगत्य (अदीमहि) त्वदनुग्रहादन्नं भक्षयेम। तथा (त्र्यम्बकम्) त्रीणि अम्बकानि नेत्राणि यस्य तादृशं देवम् (अव) अवगत्यादीमहीत्यनुवर्तते। यद्वाऽन्यदेवताभ्यः पृथक्कृत्य रुद्रमहीमहि अद्यामो भोजयामः। (यथा) येन प्रकारेण (नः) अस्मान् (वस्यसः) वस्तृतरान् वसनशीलान् (करत्) असौ कुर्यात् (यथा) येन प्रकारेण (नः) अस्मान् (श्रेयसः करत्) ज्ञातिषु प्रशास्ततरान् कुर्यात्। (यथा) यथा च (नः) अस्मान् (व्यवसाययात्) सर्वेषु कार्येषु निश्चययुक्तान् कुर्यात् तथैनं जपाम इत्यर्थः। (यजु० ३।५८) ।।३।।

भाषार्थ—पापियोंको रुलानेवाले तीन नेत्र वा भूलोक, अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक-रूप वा गमनशील वा जिनके नेत्रसे तीनलोक प्रकाशित होते हैं वा जिनके नेत्र प्रकाशसे तीनलोक आकृष्ट होते हैं अथवा तीन वेद, तीन काल, आधि दैविक आध्यात्मिक, आधि-भौतिक ही जिनके नेत्र हैं ऐसे सर्गादिसे क्रीड़ा करनेवाले शत्रुजेता प्राणियोंमें आत्मरूपसे वर्तमान द्युतिमान् स्तोत्रोंसे स्तुति किये हुए रुद्रदेवकी और देवताओंसे पृथक् कर वा उत्कृष्ठ जानकर सब दुख नाश करते हैं वा उनके अनुग्रहसे अन्न भक्षण करते हैं वा त्रिनेत्र जानकर उनको भाग देते हैं जिस प्रकार हमको वह उत्तम प्रकारसे निवास करनेवाले करें, जिस प्रकार हमको ज्ञातियोंमें श्रेष्ठतर करें, जिस प्रकार हमको सब कार्योंमें निश्चयमुक्त करें, इस प्रकार इनका जप करते हैं (आशीर्वाद) है) ।।३।।

तत्त्वविचार—जिनकी अम्बिका भगिनी है वह त्र्यंबक होते हैं, तीन लोकमें गमन होनेसे अम्बिका विद्युदग्नि विशेष रुद्रदेवताकी भगिनीस्थानीय है ।।३।।

भाषार्थ—तीन कालोंमें एकरसरूप परमात्माका भजन करना सबको उचित है वह रुद्ररूपसे प्रार्थनीय है धनसंपत्ति वही देता है, तेजकी वृद्धि वही करता है ।।३।।

मन्त्रः

भेषजमसि । भेषजङ्गवेऽश्वांयपुरुंषायभेषजम् । सुख-म्मेषायंमेष्ष्यै ॥ ४ ॥

ॐ भेषजमसीत्यस्य बन्धुर्ऋषिः । स्वराड्गायत्री छन्दः । रुद्रो देवता । जपे विनियोगः ॥ ४ ॥

भाष्यम्—हे रुद्र त्वम् (भेषजम्) औषधवत्सर्वोपद्रवनिवारकः(असि) सर्वप्राणिनां हितकारी भवसि, अतः प्रार्थयामि, अस्मदीयेभ्यः (गवे) (अश्वायः) (पुरुषाय) (भेषजम्) सर्वव्याधिनिवारकमौषधं देहि (मेषायमेष्यै) (सुखम्) क्षेमं देहीति शेषः ।सुहितं खेभ्यः प्राणेभ्यः इति सुखम् । अनेन मन्त्रेण गृहपशूनां क्षेमप्राप्तिभवती (यजे० ३।५९) ।।४।।

भाषार्थ—हे रुद्र । आप औषधवत् संपूर्ण उपद्रवोंके निवारण करनेवाले हो इस कारण हमारे गौ, घोडे, पुत्र, पौत्र भ्राता और परिजनोंके निमित्त सब रोग दूर करनेको औषधि दो वा औषधिरूप प्रकाश करो, तथा मेष मेषी आदि पशुओंके उपद्रव रहित जीव-नके निमित्त सुखदायक अपना भेषज स्वरूप प्रकाश करो (इस मंत्रसे घरके पशुओंकी क्षेमप्राप्ति होती है) ।।४।।

विशेष—पदार्थ विद्यावाले यहां विद्युत्का अर्थ करके कहते हैं कि, विद्युत् कितनी उत्कृष्ट भेषज है, यह भेषजके व्यवसायी ही विशेषरूपसे जान सकते हैं ।।४।।

मन्त्रः

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ॥ उर्वारुक मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पतिवेदनम् ॥ उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ५ ॥

ॐ त्र्यम्बकमित्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । वाङ्ब्राह्मी त्रिष्टु छन्दः । रुद्रो देवता । परिक्रमणे विनियोगः ॥ ५ ॥

भाष्यम्–(सुगन्धिम्) दिव्यगंधोपेतं मर्त्त्यधर्महीनम् (पुष्टिवर्द्धनम्) धनधान्यादि वर्द्धयितारम् (त्र्यम्बकम्) नेत्रत्रयोपेतं शिवम् (यजामहे) पूजयामः । ततो रुद्रप्रसादात् (मृत्योः) अपमृत्योः संसारमृत्योश्च (मुक्षीय) मुक्तो भूयासम् (अमृतात्) स्वर्गरूपान्मु-क्तिरूपाच्च (मा) मुक्तो (मा) भूयासम्। अभ्युदयनिःश्रेयसरूपात् फलद्वयान्मम माभू-दित्यर्थः । मृत्योर्मोचने दृष्टान्तः (इव) यथा (उर्वारुकम्) कर्कन्ध्वादेः फलमत्यन्तपक्व सत् (बन्धनात्) वृन्तात् स्वयमेव मुच्यते तद्वत् त्र्यम्बकप्रसादेन मुक्तो भूयासम् यजमान-सम्बन्धिन्यः) कुमार्योपि त्र्यम्बकमंत्रेणाग्निं त्रिः परियन्ति (पतिवेदनम्) पतिं वेदयतीति तं भर्तुर्लम्भयितारं (सुगंधिम्) दिव्यगंधियुक्तं (त्र्यम्बकम्) देवं शिवम् (यजामहे) पूज-यामः (इतः) मातृपितृभ्रातृवर्गान् (मुक्षीय) मुक्ता भूयासम् (उतः) विवाहादूर्ध्वं भवि-ष्यतः पत्युः (मा) मुक्ता मा भूयासम्। जनकस्य गोत्रं गृहं च परित्यज्य पत्युर्गोत्रे गृहे सर्वदा त्र्यम्बकप्रसादात् वसामीत्यर्थः। सा यदित इत्याह-ज्ञातिभ्यस्तदाह मामुत इति पति-भ्यस्तदाहेति २।६।२।१४ श्रुतेरितोऽमुतः शब्दाभ्यां पितृपतिवर्गोग्राह्यौ (यजु० ३।६०) "समुद्दिश्य महादेवं त्र्यम्बकं त्र्यम्बकेत्यृचा । एतत्पर्शशतं कृत्वा जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥१॥ त्रिरात्रं नियतोपोष्य श्रपयेत्पायसं चरुम् ।तेनाहुतिशतं पूर्णं जुहूयाच्छांसितव्रतः ॥२॥"॥५॥

भाषार्थ—दिव्यगंधसे युक्त, मर्त्यधर्महीन उभयलोकोंके फलदाता धनधान्यादि से पुष्टि बढ़ानेवाले पूर्वोक्तनेत्रसंपन्न शिवशंकरका पूजन करते हैं, वह रुद्र हम को मृत्यु अपमृत्यु वा संसारके मरणसे मुक्त करे वा छुड़ावे, जिस प्रकार अपने बंधनसे पके हुए कर्कटीफल अर्थात् जैसे पक्वफल अपनी ग्रंथिसे टूटकर भूपतित होता है इस प्रकार शिवकी कृपासे जन्ममरणबंधनसे चिरमुक्त हो जाऊं और स्वर्गरूपमुक्तिसे न छूटूं। अभ्युदय निश्रेय-सरूप दोनों फलसे भ्रष्ट न होऊं, पतिके प्राप्त करानेवाले वा संपूर्णगुणसंपन्नसुन्दरपति विधान करनेवाले दिव्ययश सौरभपूर्ण धर्माधर्मके ज्ञाता त्र्यंबकदेव शिवको पूजन करते

हूँ, जैसे ऊर्वारुकफल बंधनसे छूट जाता है इस प्रकार इस माता पिता भ्रातृवर्गसे वा इनके गोत्रसे छूटकर विवाह उपरान्त पतिके समीपसे मत छुटाओ। आशय यह कि पिताके गोत्र और घरको छोड़कर पतिके गोत्र और घरमें शिवजीके प्रसादसे सदा निवास करें ।।५।।

विशेष—पहला मंत्रही महामृत्युंजय कहलाता है इसको विधिपूर्वक शिवपूजन करके जप करनेसे अपमृत्यु निवारण होती है इसमें संदेह नहीं, और इस मंत्रसे यह भी विदित होता है कि मुक्त होकर फिर संसारमें नहीं आता इस मंत्रसे तीन दिन तक व्रत चरु चरुकी सौ आहुति दे तो १०० वर्ष जिये ।।५।।

मन्त्रः

एतत्ते॑ । रुद्रावसन्तेन॒परो॒मूज॑वतो॒ती॑हि॥ अव॑ततधन्वा॒ पिना॑कवास॒ꣳकृत्ति॑वासा॒ऽअहि॑ꣳसन्न॒ꣳशिवो॒ती॑हि ॥६॥

ॐ एतत्त इत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः भुरिगास्तारपंक्तिश्छन्दः । रुद्रो देवता । वंशयष्टिसंसर्जने विनियोगः ॥ ६ ॥

भाष्यम्–(रुद्र) हे रुद्र (एतत् ते) (तव) अवसम् (हविःशेषाख्यं) भोज्यम् "अवसशब्देन देशान्तरं गच्छतो मार्गमध्ये तटाकादिसमीपे भोक्तव्य ओदनविशेष उच्यते"- तेन सहितस्त्वम् (मूजवतः) पर्वतात्" मूजवान्नाम कश्चित्पर्वतो रुद्रस्य वासस्थानम्। (परः) परभागवर्ती सन् (अतीहि) अतिक्रम्य गच्छ कीदृशस्त्वम् (अवततधन्वा) अवरोपितधनुष्कः ।अस्मद्विरोधिनां त्वया निवारितत्वादित उर्ध्वं धनुषि ज्यासमारोपणस्य प्रयोजनाभावापवरोपणमेवेदानीं युक्तं तथा (पिनाकवासः) पिनाकाख्यं त्वदीयं धनुलरा वस्ते सर्वत आच्छादयतीति पिनाकवासः यथा धनुदृष्ट्वा प्राणिनो न बिभ्यति तथा त्वदीयं धनुर्वस्त्रादिना प्रच्छाद्य गच्छेत्यर्थः। हे रुद्र त्वम् (कृतिवासाः) चर्माम्बरः (नः) अस्मान् (अहिंसन्) हिंसामकुर्वम् (शिवः) अस्मदीयपूजया सन्तुष्टः कोपरहितो भूत्वा (अतीहि) पर्वतमतिक्रम्य गच्छ (यजु० ३।६१) ।।६।।

भाषार्थ—हे उक्तगुणसंपन्न महादेव । यह आपका हवि, शेषाख्य भोजन है (देशान्तरको जाते हुए मार्गमें जो तडागादिके समीप बैठकर ओदन आदि भक्ष्य खाया जाता है, उसे अवस कहते हैं) इसके साथ तुम हमारे विरोधियोंके निवारण होनेसे ज्या उतारे हुए धनुषको ले अपने पिनाक धनुषको वस्त्रमें छिपाये मूजवान् नाम पर्वतके पर भागवर्ती होकर गमन करो अर्थात् इस अपने भागको लेकर दीर्घ गन्तव्यपथ अतिक्रमण कर अपने निवासभूत मूजवान् नाम पर्वतके शिखरपर उपस्थित हो अथवा तुम्हारा निरन्तर विस्तृत धनुष है तुम अपने तेजसे स्वर्गपर्यन्त आच्छन्न करके गमन करनेमें समर्थ हो तुमको किसी प्रकार

की सहायताकी आवश्यकता नहीं (धनुष छिपाकर जानेका कारणै यह कि प्राणी भयभीत न हों अर्थात् रुद्रने अपना धनुष अब उतार लिया) हे रुद्र । तुम चर्म्माम्बर धारण किये हो वा संपूर्ण प्राणियोंके अन्तर रहनेसे चर्म्माम्बरधारी हो हमारी हिंसा न करके अर्थात् हमारी सब शारीरिक विपत्को अतिक्रम कर रक्षाके अभिप्रायसे हमारी पूजासे संतुष्ट वा कोपरहित होनेके कारण कल्याण स्वरूप होकर अपने स्थानमें निवास करो वा पर्वतको अतिक्रम कर जाओ ।।६।।

विशेष–शिवके धनुषका नाम पिनाक है गजचर्म धारण करनेसे कृत्तिवास हैं पौराणिक पदार्थविद्यावाले कहते हैं पर्वतके ऊपर मेघोंके उदय होनेसे सदा इन्द्रधनुष देखा जाता है । इस कारण वहाँ ही रुद्रका निवासस्थान कथन किया है विद्युत्में संपूर्ण शरीरके चर्म्मान्तवर्ती है इस कारण रुद्रकी विद्युतमें होनेसे कृत्तिवास और महादेव कहा है ।।६।।

मन्त्रः

त्र्यायुषञ्जमदंग्नेःकुश्यपंस्यत्र्यायुषम् ॥ यद्देवेषुंत्र्यायुषन्तनोऽअस्तुत्र्यायुषम् ॥ ७ ॥

ॐ त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः उष्णिक् छन्दः । रुद्रो देवता । वपनादौ जपे विनियोगः ॥ ७ ॥

भाष्यम्–(जमदग्नेः) मुनेः(त्र्यायुषम्) त्रयाणां बाल्ययौवनस्थाविराणामायुषां समाहारस्त्र्यायुषम् । तथा (कश्यपस्य) एतन्नामकस्य प्रजापतेः सम्बन्धि यत् (त्र्यायुषम्) त्र्यायुषम् । तथा (देवेषु) इन्द्रादिषु (यत्) यत् (त्र्यायुषम्) त्र्यायुषमस्ति (तत्) तत्सर्वम् (त्र्यायुषम्) त्र्यायुषम् (नः) अस्माकं यजमानाम् (अस्तु) भूयात् जमदग्न्यादीनां बाल्यादिषु यादृशं चरितं तादृशन्नो भूयादित्यर्थः। (यजु० ३।६२)।।७।।

भाषार्थ—हे रुद्र । जमदग्नि ऋषिकी जो बाल्य यौवन वृद्धावस्था है तथा कश्यप प्रजापतिकी जैसी तीनों अवस्थाएं हैं जैसे देवगणकी अवस्थाके चरित्र हैं वह सब त्र्यायुष मुझ यजमानको प्राप्त हों अर्थात् इन पुर्वोक्त महात्माओंकेसे चरित्र हमारे हो जायं ।।७।।

मन्त्रः

शिवोनामांसिस्वधितिस्तेपितानमस्तेऽअस्तुमामांहिंसीः ॥ निर्वर्त्तयाम्म्यायुषेन्नाद्यायप्प्रजननायरायस्पोषांयसुप्प्रजास्त्वायंसुवीर्य्यांय ॥ ८ ॥

इति सर्ठंहितायां रुद्रपाठे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ॐ शिवोनामासीत्यस्य नारायण ऋषिः । भुरिग्जगती छन्दः । क्षुरग्रहणे वपने च विनियोगः ॥ ८ ॥

भाष्यम्–हे क्षुर त्वम् (नाम) नाम्ना (शिवः) शान्तः (असि) असि (स्वधितिः) वज्रम् (ते) तव, (पिता) पिता (ते) तुभ्यम् (नमः) नमः (अस्तु) भवतु (मा) माम् (महिँ सीः) मा नाशय । हे यजमान त्वाम् (निवर्तयामि) मुण्डयामि किमर्थम् (आयुषे) जीवनाय (अन्नाद्द्याय) अन्नभक्षणाय (प्रजननाय) सन्तानाय (रायस्पोषाय) रायो धनं तस्य पोषाय पुष्टचैं (सुप्रजास्त्वाय) शोभनापत्यतायैं (सुवीर्याय) शोभनसामर्थ्याय (यजु० ३।६३) ॥८॥

भावार्थ–सर्वव्यापी होनेसे क्षुरमें व्याप्त क्षुराधिष्ठित देव । तुम नामकरके शान्त स्वभाव कल्याणकारक हो वज्र तुम्हारा पालक रक्षक है, तुम्हारे निमित्त नमस्कार है मुझको मत आघात करना । हे यजमान । इस क्रियाके फलसे जीवनके निमित्त अन्नादि भक्षणके निमित्त वहुत प्रजा बहुत धन पुष्टि उत्कृष्ट प्रजननसामर्थ्य प्रशंसनीय बलकी प्राप्तिके निमित्त भुण्डन करता हूं * ॥८॥

इति श्रीरुद्राष्टके पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्यभाषाभाष्यसमन्वितः षष्ठोऽध्यायः६

मन्त्रः

नतम्विदाथयऽइमाजजानान्यद्युष्माकमन्तरम्बभूव नीहारेणप्रावृंताजल्प्यांचासुतृपंऽउक्थशासंश्चरन्ति १

अथ सप्तमोऽध्यायः

मन्त्रः

हरिः ॐ उग्रश्श्च भीमश्श्चध्वान्तश्श्चधुनिश्श्च ॥ सासह्वाँश्श्चांभियुग्वाचंविक्षिपःस्वाहा ॥ १ ॥

---

* किसी २ रुद्राष्टकमें यह दो मंत्र विशेष देखे जाते हैं ।

ॐ उग्रश्चेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । गायत्री छन्दः। मरुतो देवताः । अरण्ये विमुखपुरोडाशहोमे वि० ॥ १ ॥

भाष्यम्–(उग्रः) उत्कृष्टः (च) भीमः विभेत्यस्मादसौ भीमः (च) (ध्वान्तः) ध्वनति शब्दं करोतीति ध्वान्तः (च) (धुनिः) धूनयति कंपयति शत्रूनीति धुनिः (च) (सासह्वान्) सहतेः शत्रूनभिभवति स सह्वान् (च) (अभियुग्वा) अभियुनक्ति अस्मत्तं-मुखं योगं प्राप्नोत्यभियुग्वा (च) (विक्षिपः) विविधं क्षिपति रिपूनिति विक्षिपः एते उग्रा-दिनामकाः सप्त मरुतः तेभ्यः (स्वाहा) सुहुतमस्तु (यजु० ३९।७) ।।१।।

भाष्यम्—उत्कृष्ट क्रोधनस्वभाव और जिससे भय लगे भयानक स्वभाव और ध्वनिकारी और शत्रुओंको कंपानेवाले और सबके तिरस्कारमें समर्थ तथा सब वस्तुओंके सहित योगवाले और प्राणीके शरीरवृद्धि आदि और वृक्षशाखादिक्षेपणकारी वा शत्रुओंके नाशक वायुदेवताकी प्रीतिके निमित्त यह आहुति देते हैं भली प्रकार गृहीत हो ।।१।।

भावार्थ—जिस परमातमाने इस सब जगत्‌को उत्पन्न किया है वह तुमसे भिन्न होकर तुम्हारे हृदयमें स्थित है । तुम जो अज्ञान और वृथाजल्पनामें प्रवृत्त हो और पुत्रपौत्रलाभा-दिसे तृप्त तथा स्वर्गफललाभमात्रके लिए यज्ञानुष्ठान करते विचरण करते हो,इस कारण उसका तत्त्व अवगत नहीं होता, निष्काम कर्म और तत्त्वविचारसे ध्यानमें आतां है ।।१।।

मन्त्रः

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देवऽआदिद्गन्धर्वोऽअभवद्द्वितीयः ॥ तृतीयः पिताजनितौषधीनामपाङ्गर्भँव्यदधात्पुरुत्रा ॥ २ ॥

भावार्थ—विश्वकर्माने प्रथम देवगणकी सृष्टि की, गन्धर्वगण उसकी दूसरी सृष्टि है, पर्जन्य उसकी तीसरी सृष्टि है, यह औषधियोंके उत्पादक पर्जन्य अनेक स्थलोंमें गर्भ-धारण करते हैं ।।२।।

मन्त्रः

अग्निँ हृदयेनाशनिँ हृदयाग्ग्रेण पशुपतिङ्कृत्स्नहृदयेन भवंय्यक्ना ॥ शर्व्वम्मतस्नाभ्यामीशानम्मन्युना-

महादेवमन्तःपर्शव्येनोग्रन्देवंव्वनिष्ठुनांव्वशिष्ठहनुः

॥ २ ॥ शिङ्गीनिकोश्याभ्याम्

ॐ अग्निमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । यजमानो देवता । अश्वाङ्गदेवताभ्यश्चतुर्गृहीताज्याहुतिदाने वि० ॥ २ ॥

भाष्यम्–(हृदयेन) अंगेन (अग्निम्) अग्निदेवं प्रीणामि (हृदयाग्रेण) हृदयस्याग्रभागेन (अशनिम्) अशनिं देवं प्रीणामि (कृत्स्नहृदयेन) सलग्रहृदयेन (पशुपतिम्) पशुपतिं देवम् (यक्ना) यकृता (भवम्) भवं देवम् (मत्स्नाभ्याम्) मत्स्ने हृदयास्थिविशेषौ ताभ्याम् (शर्व्वम्) शर्वं देवम् (मन्युना) अश्वसम्बन्धिक्रोधेन (ईशानम्) ईशानं देवम् (अन्तः पर्शव्येन) अन्तर्वर्तमानेन पर्शव्येन पार्श्वास्थिसम्बन्धिना मांसेन (महादेवम्) महादेवम् (वनिष्टुना) वनिष्टुः स्थूलान्त्रं तेन (उग्रं) देवम् (वशिष्ठहनुः) वशिष्ठस्य देवस्य हनुः कपोलैकदेशो ज्ञातव्यः। अथवा वसिष्ठाया हनुः कपोलाधोदेशः 'तत्परा हनुः" इत्यमरः। वसिष्ठहन्सा (कोश्याम्याम्) कोशो हृदयकोशः तत्स्थाभ्यां मांसपिण्डाभ्यां च (शिंगीनि) शिंगिसंज्ञानि दैवतानि प्रीणामि (यजु० ३९।८) ।।२।।

भावार्थ—हृदयद्वारा अग्निदेवताको प्रसन्न करता हूँ १, हृदयके अग्रभागसे अशनिदेवताको २, संपूर्ण हृदयसे पशुपतिदेवताको ३, यकृत् (कालखंड) द्वारा प्रभवदेवताको प्रसन्न करता हूँ ४, हृदयास्थिविशेषद्वारा शर्वदेवताको प्रसन्न करता हूँ ५, क्रोधाधारद्वारा ईशानदेवताको प्रसन्न करता हूँ ६, पार्श्वअस्थिके मध्यगतमांससे महादेवको प्रसन्न करता हूँ ७, स्थूलान्त्रसे उग्रदेवताको प्रसन्न करता हूँ ८, कपोलके एक देश वा अधोदेश और हृदयकोशमें स्थित मांसपिण्डद्वारा शिंगी देवताको प्रसन्न करता हूँ ९, (हनुद्वारा वशिष्ठको प्रसन्न करता हूँ ऐसा भी किसीका मत है १०) ।।२।।

मन्त्रः

उग्रँल्लोहितेन मित्रꣳसौव्व्रत्येनरुद्द्रन्दौर्व्व्रत्येनेन्द्रम्प्रक्रीडेनमरुतोबलेनसाद्ध्यान्प्रमुदा ॥ भवस्यकण्ठ्यꣳरुद्द्रस्यान्तःपार्श्व्यम्महादेवस्ययकृच्छर्व्वस्यंव्वनिष्ठुः पशुपतेःपुरीतत् ॥ ३ ॥

ॐ उग्रमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । निच्यृद्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । यजमानो देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्–(लोहितेन) असृजा (उग्रम्) उग्रं देवं प्रीणामि (सौव्रत्येन) शोभनं व्रतं कर्म यस्य सः सुव्रतस्तस्य भावः सौव्रत्यं शोभनगत्यादिकर्मकर्तृत्वं तेन (मित्रम्) मित्रं देवं प्रीणामि (दौर्व्रत्येन) दुष्टं स्खलनोच्छलनादि व्रतं यस्य न दुर्व्रतः तस्य भावो दौर्व्रत्य तेन (रुद्रम्) रुद्रं देवं प्रीणामि (प्रक्रीडेन) प्रकृष्टं क्रीडनं प्रक्रीडः तेन (इन्द्रम्) इन्द्रं देवं प्रीणामि (बलेः) सामर्थ्येन् (मरुतः) मरुतो देवान् प्री० (प्रमुदा) प्रकृष्टा मुत्हर्षः प्रमुत् तया (साद्धयान्) साध्यान्देवान् प्री० (भवस्य) अत्र षष्ठयन्तो देवः अंगं प्रथमान्तम् भवदेवस्य (कण्ठयम्) कण्ठे भवं मांसमस्तु विभक्तिव्यत्ययो वा कण्ठयेन भवं देवं प्रीणामि । एवमग्रेऽपि (अन्तःपार्श्वम्) पार्श्वस्यान्तर्मध्ये भवं मांसमन्तः पार्श्वम् (रुद्रस्य) रुद्रस्यास्तु (यकृत्) कालखंडम् (महादेवस्य) महादेवस्यास्तु (वनिष्ठुः) स्थूलान्त्रम् (शर्वस्य) शर्वास्यास्तु (पुरीतत्) हृदयाच्छादकमन्त्रम् (पशुपतेः) पशुपतेर्देवस्यास्तु (यजु० ३९।९) ।।३।।

भाषार्थ—लोहितद्वारा उग्रदेवताको प्रसन्न करता हूँ१, श्रेष्ठगत्यादि कर्म करनेवालेसे मित्रदेवताको प्रसन्न करता हूँ२, जो शरीरका शोणित दुर्व्रत्य करनेको प्रवृत्त होता है उससे रुद्रदेवताको प्रसन्न करता हूँ३, क्रीडा करनेमें समर्थ रक्तद्वारा इन्द्रको प्रसन्न करता हूँ४, बलप्रकाशमें समर्थ रक्तद्वारा मरुतोंको प्रसन्न करता हूँ५, प्रसन्नता करनेवाले द्वारा साध्यदेवताको प्रसन्न करता हूँ६, कंठमें होनेवालेसे भवदेवताको प्रसन्न करता हूँ७, पार्श्वकी मध्यरक्तिमासे रुद्रको प्रसन्न करता हूँ ८, यकृत्के रक्तद्वारा महादेवताको प्रसन्न करता हूँ९ स्थूलान्त्रद्वारा शर्वदेवताको प्रसन्न करता हूँ१०, हृदयाच्छादक नाडीकी रक्तिमाससे पशुपतिको प्रसन्न करता हूँ११, अर्थात् सर्वांग देवताओंके हैं इससे सर्वस्व त्याग है ममत्व कुछ नहीं है । इसमें स्थानगत रुधिरके गुण कहे हैं ।।३।।

मन्त्रः

लोमँभ्यः स्वाहा लोमँभ्यः स्वाहात्वचे स्वाहांत्वचे-स्वाहालोहिंतायस्वाहालोहिंतायस्वाहामेदोभ्यः स्वाहा मेदोंभ्यः स्वाहां ॥ माꣳसेभ्यः स्वाहामाꣳसेभ्यः स्वाहास्नावभ्यः स्वाहास्नावंभ्यः स्वाहास्त्थभ्यः स्वा-

हास्त्वभ्यः॒स्वाहा॒मज्जभ्यः॒स्वाहा॒मज्जभ्यः॒स्वाहा :॥
रेतसे॒स्वाहा॒पायवे॒स्वाहा ॥ ४ ॥

ॐ लोमभ्य इत्यस्य पंचाक्षरमन्त्राणां प्रजापतिर्ऋषिः। दैवी पङ्क्तिश्छन्दः । अङ्गानि देवता । चतुरक्षमन्त्राणां दैवी बृहती० षडक्षरमन्त्राणांदैवी त्रिष्टुप्० । अष्टाक्षरमन्त्राणां दैवी त्रिष्टुप्० प्रायश्चित्ताहुतिदानेविनियोगः ॥ ४ ॥

भाष्यम्—लोमभ्यः स्वाहेति प्रायश्चित्ताहुतयो द्विचत्वारिंशल्लोमादीन्यंगानि (लोमभ्यः स्वाहा) लोमानि जुहोमीत्यर्थः ।(त्वचे) त्वचे (लोहिताय) लोहिताय, (मेदोभ्यः) मेदोधातुविशेषेभ्यः (मांसेभ्यः) मांसेभ्यः (स्नावभ्यः) स्नावानः स्नायवो नसाः (अस्थभ्यः) अस्थिभ्यः (मज्जभ्यः) मज्जा षष्ठो धातुः (रेतसे) रेतो वीर्यम् (पायवे) पायुर्गुदम्- (यजु० ३९।१०) ।।४।।

भावार्थ—लोमोंके निमित्त सुहुत हो१, व्यष्टिलोमोंके निमित्त सुहुत हो २, त्वचाके निमित्त सुहुत हो३, व्यष्टित्वचाके निमित्त सुहुत हो४, लोहितके निमित्त सुहुत हो ५, लोहितके निमित्त सुहुत हो ६, मेदके निमित्त सुहुत हो७, मेदके ८, मांसके निमित्त सुहुत हो९, मांसके० १०, स्नायुओंके निमित्त सुहुत हो११, स्नायुके निमित्त० १२, अस्थियोंके निमित्त सुहुत हो १३, अस्थियोंके० १४, मज्जाके निमित्त श्रेष्ठ होम हो १५, मज्जाके निमित्त सुहुत हो १६, वीर्यके निमित्त सुहुत हो, १७ गुदाके निमित्त सुहुत हो ।।१८।।४।।

मन्त्रः

आयासाय॒स्वाहा॒ प्रायासाय॒स्वाहा॒संयासाय॒स्वाहा॒ वियासाय॒स्वाहो॒द्यासाय॒स्वाहा॒ ॥ शुचे॒स्वाहा॒शोचते॒ स्वाहा॒शोचमानाय॒स्वाहा॒शोकाय॒स्वाहा॒ ॥ ५ ॥

ॐ अयासायेत्यस्य विनियोगः पूर्ववत् ॥ ५ ॥

भाष्यम्–(आयासाय) आयासादयोदेवविशेषाः प्रायासाय संयासाय वियासाय उद्यासाय शुचे, शोचते, शोचमानाय, शोकाय, देवविशेषाय (स्वाहा) सुहुतमस्तु ! (यजु० ३९।११) ।।५।।

भावार्थ—आयास देवताके निमित्त सुहुत हो १, प्रायासके निमित्त सुहुत हो २, संयास देवताके निमित्त सुहुत हो ३, वियासदेवताके निमित्त सुहुत हो४, उद्यासदेवताके निमित्त सुहुत हो५, शुचदेवताके निमित्त सुहुत हो६, शोचत्‌देवताके निमित्त सुहुत हो७ शोचमानके निमित्त सुहुत हो ८, शोकके निमित्त सुहुत हो ।।९।।५।।

विशेष—देहपरिश्रमको भोग हो, इन्द्रियपरिश्रमको भोग हो, मानसपरिश्रमको भोग हो, बुद्धिपरिश्रमको भोग हो, प्राणपरिश्रमको भोग हो, यह आयासादि पांचोंका अर्थ है ।।५।।

मन्त्रः

तपंसेस्वाहा तप्प्यंतेस्वाहातप्प्यंमानायस्वाहांतप्ताय-स्वाहांधर्म्मायस्वाहां ॥ निष्कृंत्यैस्वाहाप्प्रायश्चित्त्यै-स्वाहांभेषजायस्वाहा ॥ ६ ॥

ॐ तपस इत्यस्य विनियोगः पूर्ववत् ॥ ६ ॥

भाष्यम्–(तपसे) तप्यते, तप्यमानाय, तप्ताय, धर्माय, निष्कृत्यै, प्रायश्चित्यै भेषजाय, स्वाहा । (यजु० ३९।१२) ।।६।।

भावार्थ—तपके निमित्त सुहुत हो १, तप्यत्‌के निमित्त सुहुत हो २, तप्यमानके निमित्त सुहुत हो ३, तप्तके निमित्त सुहुत हो४, घर्मके निमित्त सुहुत हो ५, निष्कृतिके निमित्त सुहुत हो ६, प्रायश्चित्तके निमित्त सुहुत हो७, भेषजके निमित्त भोगसमर्पण हो ।।८।।६।।

मन्त्रः

यमायस्वाहान्तंकायस्वाहांमृत्यवेस्वाहा ॥ ब्रह्मंणे स्वा-हांब्ब्रह्महत्यायैस्वाहाव्विश्श्वेंब्भ्योदेवेब्भ्यः स्वाहा द्या-वांपृथिवीब्भ्याᳬ स्वाहां ॥ ७॥

इत्तिसᳬहितायांरुद्रापाठेसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

ॐ यमायेति विनियोगः पूर्ववत् ॥ ७ ॥

भाष्यम्-(यमाय) प्रेतपतये (अन्तकाय) कालाय (मृत्यवे) मृत्युनामकाय (ब्राह्मणे) परमात्मने (ब्रह्महत्यायै) ब्रह्महत्यायै (विश्वेभ्यो देवेभ्यः) एतेभ्यो देवेभ्यः (स्वाहा) सुहुतमस्तु (द्यावापृथिवीभ्याम्)द्यावापृथिवीभ्याम् (स्वाहा) सुहुतमस्तु इत्यन्तामाहुति जुहुयात् (यजु० ३९।१३)।।७।।

भाषार्थ—यमके निमित्त सुहुत हो१, अन्तकके निमित्त सुहुत हो२, मृत्युके निमित्त सुहुत हो३, ब्रह्मके निमित्त सुहुत हो४, ब्रह्महत्याके निमित्त सुहुत हो५, संपूर्ण देवताओंके निमित्त सुहुत हो६, भूलोकसे द्युलोकपर्यन्त जितने देवता हैं उन सबकी प्रीतिके निमित्त यह शेष पूर्णाहुति दी जाती है भली प्रकारसे गृहीत हो ।।७।।

इति श्रीरुद्राष्टके पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य्यभाषाभाष्यसमन्वितः सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अथाष्टमोऽध्यायः

मन्त्रः

हरिः ॐ ॥ व्वाजंश्च्चमेप्रसवश्च्चंमेप्रयतिश्च्चमेप्रसितिश्च्चमेधीतिश्च्चंमेक्क्रतुश्च्चमेस्वरश्च्चमेश्लोकंश्च्चमेश्श्रवश्च्चंमेश्श्रुतिंश्च्चमेज्ज्योतिंश्च्चमेस्वश्च्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ १ ॥

ॐ वाजश्च म इत्यस्य देवा ऋषयः शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वसोर्धाराहुतिहोमे विनि० ॥ १ ॥

भाष्यम्—यजमान आज्यसंस्कृत्यार्थपरिमाणया महत्यौदुम्वर्या स्रुचा महता स्रुवेण पंचवारं गृहीतमाज्यमरण्येनूच्ये पुराडाशे तदुपरि सन्ततं विच्छिन्नधारं यथातथा वसोर्धारा॰ संज्ञामाहुतिं जुहोति । घृतेग्निप्राप्ते सति वाजश्चेत्यादिहोममंत्रारम्भाः । चकाराः समुच्चयार्थाः। (वाजः) अन्नम् (प्रसवः) अन्नदानाभ्यनुज्ञा दीयतां भुज्यतामिति, (प्रयतिः) शुद्धिः (प्रसितिः) बन्धनमन्नविषयौत्सुक्यम् (धीतिः) ध्यानम् (क्रतुः) संकल्पो यज्ञो वा (स्वरः) साधुशब्दः (श्लोकः) पद्यबन्धः स्तुतिर्वा (श्रवः) वेदमन्त्राः श्रवणसामर्थ्यं वा (श्रुतिः) ब्राह्मणम् श्रवणसामर्थ्यं वा (ज्योतिः) प्रकाशः (स्वः) स्वर्गः एते (मे)मम

(यज्ञेन) यज्ञेन (कल्पन्ताम्) सम्पन्ना भवन्तु । स यज्ञो वाजादीनां दातास्मभ्यं भवत्वित्यर्थः । एवमग्रे सर्वत्र (यजु० ४८।१) ॥१॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवगण मेरे निमित्त अन्न और मेरे निमित्त (दीयतां भुज्यताम्) इस प्रकार अन्नदानकी अनुज्ञा और मेरे निमित्त; शुद्धि अन्न विषयक उत्सुकता ध्यान विचार और संकल्प वा यज्ञ और साधुशब्द, पद्यबंधन वा स्तुति और देवमंत्रोंका श्रवण वा उसकी सामर्थ्य, ब्राह्मण श्रवणकी सामर्थ्य, प्रकाश और स्वर्ग प्राप्त करें, अर्थात यज्ञके फलसे यह सब पदार्थ हमको प्राप्त हों ॥१॥

मन्त्रः

प्राणश्चमेऽपानश्चमे व्यानश्चमेऽसुश्चमे चित्तञ्चमऽआधीतञ्चमे वाक्चमे मनश्चमे चक्षुश्चमे श्रोत्रञ्चमे दक्षश्चमे बलञ्चमे यज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ २ ॥

ॐ प्राण इत्यस्य देवा ऋषयः । निचृदतिजगती छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २ ॥

भाष्यम्–(प्राणः) ऊर्ध्वसंचारी शरीरवायुः (अपानः) अधोवृत्तिर्वायुः (व्यानः) सर्वशरीरगामी वायुः (असुः) प्रवृत्तिमान वायुः (चित्तं) मनसः संकल्पः (आधीतम्) बाह्यविषयज्ञानम् (वाक्) वागिन्द्रियम् (मनः) प्रसिद्धम् (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रियम् (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रियम् (दक्षः) ज्ञानेन्द्रियकौशलम् (बलम) कर्मेन्द्रियकौशलम् एतानि (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पन्ना भवन्तु । (यजु० १८।२) ॥२॥

भाषार्थ—मेरे निमित्त अवश्य प्राण (ऊर्ध्ववायु) और मेरे निमित्त अपान (अधोवायुप्रवृत्ति) और मेरे निमित्त शरीर संचारी सायु, प्रवृत्तिमान् वायु, मानस संकल्प, बाह्य विषय ज्ञान, वागिन्द्रियसामर्थ्य, मन चक्षु इंद्रिय सामर्थ्य, श्रोत्रइन्त्रिय सामर्थ्य, ज्ञानेन्द्रियकी कुशलता और वल इस यज्ञके फलसे प्राप्त हों ॥२॥

मन्त्रः

ओजश्चमे सहश्चमऽआत्माचमे तनूश्चमे शर्म्मचमे वर्म्मचमेऽङ्गानिचमेऽस्थीनिचमे परूंषिचमे शरीराणिचमऽआयुश्चमे जराचमे यज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

ॐ ओज इत्यस्य देवा ऋषयः । भुरिकृच्छकरी छन्दः । अग्नि देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्–(ओज :) बलहेतुरष्टमो धातुः (सहः) शारीरं बलं सम्पन्नाभिभवितृत्वं वा (आत्मा) परमात्मा (तनूः) रम्यं वपुः (शर्म) सुखम् (वर्म) कवचम् (अंगानि) हस्ताद्यावयवाः (अस्थीनि) शरीरगतानि (परूंषि) अंगुल्यादिपर्वाणि (शरीराणि) पूर्वानुक्ताः शरीरावयवाः (आयुः) जीवनम् (जरा) वार्धक्यान्तमायुः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । (यजु० १८।३) ।।३।।

भावार्थ—बलहेतु शरीरकी आठवीं धातु, शत्रुका तिरस्कार करनेवाला बल, आत्मज्ञान मनोहर शरीर, सुख, कवच, हस्तादि अवयवोंकी दृढता, शरीरकी अस्थियोंकी दृढता, अंगुल्यादिपर्वोंकी दृढता, शरीरका आरोग्य, जीवन और वार्धक्यपर्यन्त, आयु मेरे निमित्त इस यज्ञके फलसे देवता संपादन करें ।।३।।

मन्त्रः

ज्यैष्ठ्यं॑ च म॒ऽआधि॑पत्यं च मे म॒न्युश्च॑ मे॒ भाम॑श्च मे॒ऽमश्च॑ मे॒ऽम्भश्च॑ मे जे॒मा च॑ मे महि॒मा च॑ मे वरि॒मा च॑ मे प्रथि॒मा च॑ मे वर्षि॒मा च॑ मे द्राघि॒मा च॑ मे वृ॒द्धं च॑ मे॒ वृद्धि॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

ॐ ज्येष्ठमित्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृदत्यष्टिश्छं० । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ४ ॥

भाष्यम्–(ज्यैष्ठ्यम्) प्रशस्तत्वम् (आधिपत्यम्) स्वामित्वम् (मन्युः) मानसः क्रोधः (भामः) अधिक्षेपादिलिंगको बाह्यः क्रोधः । (मः) न मीयत इत्यमः अपरिमेयत्वम् (अम्भः) शीतमधुरं जलम् (जेमा) जयस्य भावो जयसामर्थ्यम् (महिमा) महतो भावो महिमा महत्त्वम् (वरिमा) उरोर्भावो वरिमा प्रजादिविशालत्त. (प्रथिमा) पृथोर्भावः गृहक्षेत्रादिविस्तारः (वर्षिमा) दीर्घजीवित्वम् (द्राघिमा) अविच्छिन्नवशत्वम् (वर्द्धम्) प्रभूतमन्नधनादि (वृद्धिः) विद्यादिगुणैरुत्कर्षः एते मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । (यजु० १८।४) ।।४।।

भावार्थ—और बड़ाई, स्वामित्व, मानसकोप, बाह्यकोप, गंभीरता, अपरिमेयत्व-शीतमधुर जल जयकी सामर्थ्य, महत्त्व, प्रजादि विशालता, गृहक्षेत्रादि विस्तार, दीर्घ

जीवित्व यह सब मेरे निमित्त प्राप्त हों, वंशपरंपराकी प्राप्ति, बहुत अन्न धनादि, विद्यादि गुणकी उत्कर्षता यज्ञके द्वारा संपादन करें अर्थात् दें ।।४।।

मन्त्रः

सत्यञ्चमेश्रद्धाचमेजगच्चमेधनञ्चमेविश्वञ्चमेमहश्चमेक्रीडाचमेमोदश्चमेजातञ्चमेजनिष्यमाणञ्चमे-सूक्तञ्चमेसुकृतञ्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

ॐ सत्यमित्यस्य देवा ऋषयः । विराट् शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू ॥ ५ ॥

भाष्यम्–(सत्यम्) यथार्थभावित्वम् (श्रद्धा) परलोकविश्वासः (जगत्) जंगमं गवादि (धनम्) कनकादि (विश्वम्) स्थावरम् (महः) दीप्तिः (क्रीडा) अक्षद्यूतादिः (मोदः) क्रीडादर्शनजो हर्षः (जातम्) पुत्रोत्पन्नमपत्यम् (जनिष्यमाणम्) भविष्यदपत्यम् (सवतूम्) ऋकसमूहः (सुकृतम्) ऋकपाठजन्यं शुभादृष्टम् एते (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । (यजु० १८।५) ।।५।।

भावार्थ—और मेरे निमित्त यथार्थ भाषण, परलोक विश्वास, जंगमवादि, सुवर्णादि स्थावर पदार्थ, दीप्ति, क्रीडा, क्रीडा दर्शनका हर्ष, पुत्रसे उत्पन्न अपत्य, होनेवाले अपत्य सन्तान, ऋचाओंका समूह, ऋचाओंके पाठसे शुभ अदृष्ट देवताओं द्वारा इस यज्ञके फलसे प्राप्त हो ।।५।।

मन्त्रः

ऋतञ्चमेमृतञ्चमेयक्ष्मञ्चमेनामयच्चमेजीवातुश्चमेदीर्घा-युत्वञ्चमेनमित्रञ्चमेभयञ्चमेसुखञ्चमेशयनञ्चमेसूषाश्च-मेसुदिनञ्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

ॐ ऋतमित्यस्य देवा ऋषयः । भुरि गतिशक्करी छं० । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ६ ॥

भाष्यम्–(ऋतम्) यज्ञादिकर्म (अमृतम्) तत्फलभूतं स्वर्गादि (अयक्ष्मः) यक्ष्मणोऽभावोऽयक्ष्मं धातुक्षयादिरोगभावः (अनामयत्) सामान्यव्याधिराहित्यम् (जीवातुः) व्याधिनाशकमौषधम् (दीर्घायुत्वम्) बहुकालमायुः (अनमित्रम्) शत्रुराहित्यम् (अभयम्) भीतिराहित्यम् (सुखम्) आनन्दः (शयनम्) संस्कृता शय्या (सूषाः) शोभनः उषः स्नानसंध्यादियुक्तः प्रातः कालः (सुदिनम्) यज्ञदानाध्ययनादियुक्तं सर्वं दिन एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सिध्यन्तु (यजु० १८।६) ।।६।।

भावार्थ—यज्ञादि कर्म, उसका फल स्वर्गादि, धातुक्षयादि रोगका अभाव, सामान्य व्याधिका अभाव, व्याधिनाशक औषधि, दीर्घायु, शत्रुओंका अभाव, निर्भयता, आनंद, सजाई हुई सेज, संध्यासंदनादि युक्त सुप्रभात और यज्ञदानाध्ययनादि युक्त संपूर्ण दिन इस यज्ञके फलसे देवता यह सब मेरे निमित्त प्रदान करें ।।६।।

मन्त्रः

यन्ताचंमेधर्ताचंमेक्षेमंश्चमेधृतिश्चमे विश्वञ्चमेमहंश्चमेसंविच्चंमेज्ञात्रञ्चमेसूश्चचंमेप्रसूश्चचंमेसीरञ्च मेलयंश्चमेयज्ञेनंकल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

ॐ यन्ताचेत्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृदतिजगती छन्दः अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ७ ॥

भाष्यम्–(यन्ता) अश्वादेर्नियन्ता (धर्ता) पोषकः पित्रादिः (क्षेमः) विद्यामानधनस्य रक्षणशक्तिः (धृतिः) आपत्स्वपि स्थिरचित्तत्वम् (विश्वम्) सर्वानुकूल्यम् (महः) पूजा (संवित्) वेदशास्त्रादिज्ञानम् (ज्ञात्रम्) विज्ञानसामर्थ्यम् (सूः) पुत्रादिप्रेरणसामर्थ्यम् (प्रसूः) पुत्रोत्पत्यादिसामर्थ्यम् (सीरम्) हलादि कृषिकृतधान्यनिष्पत्तिः (लयः) कृषिप्रतिबन्धनिवृत्तिः । एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम) सम्पद्यन्ताम् । (यजु० १८।७) ।।७।।

भाषार्थ—अश्वआदिका नियन्तृत्व, प्रजाकी पालन शक्ति, विद्यमान धनकी रक्षण शक्ति, आपत्तिमें भी स्थिरचित्तता, सबकी अनुकूलता, पूजासत्कार, वेदशास्त्रादिका ज्ञान, विज्ञानकी सामर्थ्य, आज्ञा प्रदान वा पुत्रादि प्रेरणकी सामर्थ्य, पुत्रोत्पत्ति आदिकी सामर्थ्य, कृषि आदिके उपयोगी हलादि वा कृषिकृत धान्यकी प्राप्ति और कृषिके प्रतिबंधकी निवृत्ति, अनावृष्टिका अभाव यह सब यज्ञ द्वारा अर्थात् इस यज्ञके फलसे मेरे निमित्त देवता प्रदान करें ।।७।।

मन्त्रः

शंचमेमयश्चमेप्रियञ्चमेनुकामश्चमेकामश्चमे सौम-नसश्चमेभगश्चमेद्रविणञ्चमेभद्रञ्चमेश्रेयश्चमेवसी-यश्चमेयशश्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

ॐ शमित्यस्य देवा ऋषयः । विराट् शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ८ ॥

भाष्यम्–(शम्) ऐहिकं सुखम् (मयः) आमुष्मिकं सुखम् (प्रियम्) प्रीत्युत्पादकं वस्तु (अनुकामः) अनुकूलयत्नसाध्यः पदार्थः (कामः) विषयभोगजनितं सुखम् (सौमनसः) मनःस्वास्थ्यकरो बन्धुवर्गः (भगः) सौभाग्यम् (द्रविणम्) धनम् (भद्रम्) ऐहिकं कल्याणम् (श्रेयः) पारलौकिकम् (वसीयः) निवासयोग्यो वसुमान गृहादिः (यशः) कीर्तिः । एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) क्लृप्ता भवन्तु । (यजु० १८।८) ॥८॥

भाषार्थ—इस लोकका सुख परलोकका सुख, प्रीति आदिकी उत्पादक वस्तु, अनुकूल, यत्नसे साध्य पदार्थ, विषय भोगजनित सुख, मनके स्वास्थ्यकारी बंधुवर्ग सौभाग्य, धन, इस लोकका कल्याण, पारलौकिक कल्याण, निवास योग्य धन युक्त गृहादि और कीर्ति यह सब मेरे निमित्त देवता यज्ञके फलसे प्रदान करें ॥८॥

मन्त्रः

ऊर्क्चमेसूनृताचमेपयश्चमेरसश्चमेघृतञ्चमेमधुचमे-सग्धिश्चमेसपीतिश्चमेकृषिश्चमेवृष्टिश्चमे-जैत्रञ्चमऽऔद्भिद्यञ्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

ॐ ऊर्क्चेत्यस्य देवा ऋषयः । शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ९ ॥

भाष्यम्–(ऊर्क्च) अन्नम् (सूनृता) प्रिया सत्या वाक् (पयः) दुग्धम् (रसः) सारः (घृतम्) आज्यम् (मधु) क्षौद्रम् (सग्धिः) बन्धुभिः सह भोजनम् (सपीतिःबन्धुभिः

सह पानम् (कृषिः) तत्कृतधान्यसिद्धिः (वृष्टिः) धान्यनिष्पादिकानुकूला (जैत्रम्) जय-सामर्थ्यम् (औद्भिद्यम्) आम्रादिवृक्षोत्पत्तिः एते मम यज्ञेन कल्पन्ताम् । (यजु० १९। ।।९।।

भाषार्थ—अन्न, प्रिय सत्यवाक्य, दूध, दुग्धसार, घृत, शहत वा मधुर पदार्थ, बांधवोंके साथ एकत्र भोजन, बंधुजनोंके साथ एकत्र पान कृषिद्वारा धान्य सिद्धि, धान्य उत्पन्न होनेकी अनुकूल वृष्टि, जयकी सामर्थ्य और आम्रादि वृक्षोंकी उत्पत्ति, यह सब इस यज्ञके फलसे देवता मेरे निमित्त प्रदान करें ।।९।।

मन्त्रः

रयिश्च्चमेरायश्च्चमेपुष्टञ्चमेपुष्टिश्च्चमेव्विभुचमेप्रभु चमेपूर्णञ्चमेपूर्णतरञ्चमेकुयवञ्चमेक्षितञ्चमेन्नञ्चमे क्षुच्चमे यज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ १० ॥

ॐ रयिश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । निचृच्छक्वरी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्—(रयिः) सुवर्णम् (रायः) मुक्तादिमणयः (पुष्टम्) धनपोषः (पुष्टिः) शरीरपोषकः (विभुः) व्याप्तिसामर्थ्यम् (प्रभुः) ऐश्वर्यम् (पूर्णम्) धनपुत्रादि बाहुल्यम् (पूर्णतरम्) अत्यन्तं पूर्णं पूर्णतरं गजतुरगादि बाहुल्यम् (कुयवम्) कुत्सितधान्यमपि (अक्षितम्) क्षयहीनं धान्यादि (अन्नम्) ओदनादि (क्षुत्) भक्तान्नपरिपाकः एते (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पन्ना भवन्तु । (यजु० १८।१०) ।।१०।।

भाषार्थ—सुवर्ण, मोतीआदि, धनकी पुष्टि, शरीरकी पुष्टता, व्याप्ति सामर्थ्य ऐश्वर्य वा प्रभुताकी सामर्थ्य, धनपुत्रादिकी बहुतायत, गजतुरंग आदिकी बहुतायत' निकृष्टयव वा निकृष्टयवोंसे मिले व्रीहि आदि अन्न, क्षयहीन धान्यादि; चावल, भात आदि और भोजन किये अन्न पाक, यह सब मेरे निमित्त इस यज्ञके फलसे देवता कल्पना करें ।।१०।।

मन्त्रः

व्वित्तञ्चमेवेद्यञ्चमेभूतञ्चमेभविष्यच्चमेसुगञ्चमेसुपत्थ्य-ञ्चमऽऋद्धञ्चमऽऋद्धिश्च्चमेक्लृप्तञ्चमेक्लृप्तिश्च्चमेमतिश्च्च मेसुमतिश्च्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

ॐ वित्तमित्यस्य देवा ऋषयः । भुरिक्छक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्–(वित्तम्) पूर्वलब्धं धनम् (वेद्यम्) लब्धव्यम् (भूतम्) पूर्वसिद्धं क्षेत्रादि (भविष्यम्) सम्पत्स्यमानं क्षेत्रादि (सुगम्) सुखेन गम्यते यत्र तत्सुगं सुगम्यो देशः (सुपथ्यम्) शोभनं हितम् (ऋद्धम्) समृद्धं यज्ञफलम् (ऋद्धिः) यज्ञादिसमृद्धिः (क्लृप्तम्) कार्यक्षेमं द्रव्यादि (क्लृप्तिः) स्वकार्यसामर्थ्यम् (मतिः) पदार्थमात्रनिश्चयः (सुमतिः) दुर्घटकार्यादिषु निश्चयः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । (यजु० १८।११) ॥११॥

भाषार्थ—पूवलब्ध धन, संपद्यमान धन, पूर्वसिद्धि क्षेत्रादि, भविष्यकालमें होने वाले क्षेत्रादि, सुखगम्य देश वा सुखबोधकी सामर्थ्य, शोभनहित, समृद्धयज्ञका फल, यज्ञादिकी समृद्धि कार्य साधक अपर्याप्त धन द्रव्य, स्वकार्य साधन सामर्थ्य, पदार्थ मात्रका निश्चय और दुर्घट कार्यादिका निश्चय यह सब मेरे निमित्त इस यज्ञके फलसे देवता प्रदान करें ॥११।

मन्त्रः

व्रीहयश्चमेयवाश्चमेमाषाश्चमेतिलाश्चमे मुद्गाश्चमेखल्वाश्चमेप्रियङ्गवश्चमेणवश्चमेश्यामाकाश्चमेनीवाराश्चमेगोधूमाश्चमेमसूराश्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

ॐ व्रीहय इत्यस्य देवा ऋषयः । भुरिगतिशक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १२ ॥

भाष्यम्—(व्रीहयः) व्रीहयः (यवाः) यवाः (माषाः) (तिलाः) तिलाः (मुद्गाः) मुद्गाः (खल्वाः) चणकाः लङ्काश्च (प्रियंगवः) कंगवः प्रसिद्धाः (अणवः) चीनकाः (श्यामाकाः) तृणधान्यानि ग्राम्याणि कोद्रवत्वेन प्रसिद्धानि (नीवाराः) तृणधान्यान्यरण्यानि (गोधूमाः) गोधूमाः (मसूराः) मसूराश्च एते धान्यविशेषाः (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) संपद्यन्ताम् । (यजु० १८।१२) ॥१२॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको व्रीहिधान्य प्रदान करें, इस यज्ञ के फलसे देवतालोग मुझको जौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उडद प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तिल प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको

मूंग प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चना प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको कंगनी प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चीनक तंदुल प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तृणधान, श्यामाक प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवता-लोग मुझको नीवार धान्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको गेहूँ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मसूर प्रदान करें, ।।१२।।

मन्त्रः

अश्म्मांचमेमृत्तिकाचमेगिरयंश्चमेपर्वताश्च्चमेसिकता श्चमेव्वनस्प्पतयश्चमेहिरंण्यञ्चमेयंश्च्मेचश्यामञ्चमेलो हञ्चमेसीसञ्चमेत्रपुंचमेयज्ञेनंकल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

ॐ अश्मेत्यस्य देवा ऋषयः भुरिगतिशक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १३ ॥

भाष्यम्–(अश्मा) पाषाणः (मृत्तिका) प्रशस्ता मृत् (मिरयः) क्षुद्रपर्वताः गोवर्द्धनार्बुदरैवतकादयः(पर्वताः)महान्तो मंदरहिमालयादयः (सिकताः) शर्कराः (वनस्पतयः) पुष्पं विना फलवन्तः पनसोदुम्बरादयः (हिरण्यम् सुवर्णम् रजतंवा) (अयः) लोहम् (श्यामम्) ताम्रलोहम् (लोहम्) लोहं कालायसम् (सीसम्) सीसं प्रसिद्धम् (त्रपु) रंगम् एते कार्यविशेषु (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् (यजु० १८।१३) ।।१३।।

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको पाषाण प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको श्रेष्ठ मृत्तिका प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको छोटे पर्वत प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको मन्दरादि बड़े पर्वत प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको बालू प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको वनस्पति प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको सुवर्ण प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको लोहा प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको तांबा प्रदान करें, इस यक्षके फलसे, देवता लोग मुझको काँसी प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको सीसा प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको रांग प्रदान करें अर्थात् मनुष्यों को इन वस्तुओंसे कार्य कौशल करके अपनी उन्नति करनी चाहिये ।।१३।।

मन्त्रः

अग्निश्चं मऽआपंश्च्चमेव्वीरुधंश्च्चमेऽओषधंयश्च्चमेकृष्टपच्च्याश्च्चंमेकृष्टपच्च्याश्च्चंमेग्राम्म्याश्च्चंमेपशवंआरण्याश्च्चंमेव्वित्तश्चंमेव्वित्तिंश्च्चमेभूतश्चंमेभूतिंश्च्चमेयज्ञेनंकल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

ॐ अग्निरित्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृदष्टिश्छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्-(अग्निपृथिवीस्थो वह्निः) (आपः) अन्तरिक्षस्थानि जलानि (वीरुधः) गुल्माः (ओषधयः) फलपाकान्ताः (कष्टपच्याः) भूमिकर्षणबीजवापादिकर्मभिर्निष्पाद्या औषधयः (अकृष्टपच्याः) स्वयमेवोत्पद्यमानाः नीवारगवेधुकादयः (ग्राम्याः) ग्रामे भवाः(पशवः) गोऽश्वमहिषाजाविगर्दभोष्ट्रादयः (आरण्याः) अरण्ये भवाः पशवः हस्तिसिंहशरभमृगगवयमर्कटादयः (वित्तम्) पूर्वलब्धम् (वित्तिः) भाविलाभः (भूतम्) जातपुत्रादिकम् (भूतिः) ऐश्वर्यं स्वार्जितम् ।एतानि (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् (यजु० १८।१४) ।।१४।।

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अग्निकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको जलकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फल से देवता लोग मुझको लता प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको फल पकनेतक रहनेवाली औषधि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग जोतने बोनेसे प्राप्त होनेवाली औषधि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको स्वयं उत्पन्न होनेवाले नीवार गवेधुकादि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बिडालादि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको हाथि आदि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पूर्वलब्ध प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको होनहार लाभ प्रदान करें; इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको विद्यमान पुत्रादि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ऐश्वर्य प्रदान करें ।।१४।।

मन्त्रः

व्वसुंचमेव्वसतिश्च्चंमेकर्म्मंचमेशक्तिंश्चमेर्थंश्च्चमऽएमंश्च्चमऽइत्याचंमेगतिंश्च्चमेयज्ञेनंकल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

ॐ वसुचेत्यस्य देवाऋषयः । विराडार्षी बृहती छं० । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १५ ॥

भाष्यम्–(वसु) धनं गवादिकम् (वसतिः) वासस्थानं गृहम् (कर्म) अग्निहोत्रादि (शक्तिः) तदनुष्ठानसामर्थ्यम् (अर्थः) अभिलषितः पदार्थः (एमः) प्राप्तव्योऽर्थः (इत्याभावे क्यप् अयनमिष्टप्राप्त्युपायः (गतिः) इष्टप्राप्तिः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । (यजु० १८।१५) ।।१५।।

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको धन प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वासस्थान (गृह) प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अग्नि-होत्रादि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उसके अनुष्ठानकी सामर्थ्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अभिलषित पदार्थ प्रदान करें,इस यज्ञके फलसे देवता-लोग मुझको प्राप्तियोग्य अर्थप्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देव तालोग मुझको इष्टप्राप्तिका उपाय प्रदान करें. इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इष्टकी प्राप्ति प्रदान करें ।।१५।।

मन्त्रः

अग्निश्चमऽइन्द्रंश्चमेसोमंश्चमऽइन्द्रंश्चमेसविताचंमऽ इन्द्रश्चमेसरंस्वतीचमऽइन्द्रंश्चमेपूषाचंमऽइन्द्रश्चमेबृ-हस्पतिंश्चमऽइन्द्रंश्चमेयज्ञेनंकल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

ॐ अग्निरित्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृद्ब्राह्मी पंक्ति-श्छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १६ ॥

भाष्यम्–(अथार्धेन्द्राणि जुहोति अर्धस्येन्द्रदेवत्यत्वादर्धस्य (नादेवत्यत्वात् (अग्नि) (इन्द्रः) (सोमः) (इन्द्रः) (सविता) (इन्द्रः) (सरस्वती) इन्द्रः) (पूषा) (इन्द्रः) (बृहस्पतिः) (इन्द्रः) एते प्रसिद्धाः देवता (तैः) समानभागत्वादिन्द्र एकैका सह पठ्यते यास्कोक्ता इन्द्रशब्दस्य नानार्थाः कार्या एवमग्रेऽपि कण्डिकाद्वये ज्ञातव्यम् । एते कल्प न्ताम् । (यजु० १८।१६) ।।१६।।

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अग्निकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्रदेवकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता-लोग मुझको सोमदेवताकी अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सविता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता

लोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको सरस्वती (वाणी) की अनुकूलता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पूषादेवता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बृहस्पति प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्रकी अनुकूलता प्रदान करें ॥१६॥

मन्त्रः

मित्रश्चंमऽइन्द्रंश्चमेव्वरुणश्चमऽइन्द्रंश्चमेधाताचंमऽ इन्द्रंश्चमेत्त्वष्टांचमऽइन्द्रंश्चमेमरुतंश्चमऽइन्द्रंश्चचमे- व्विश्वेंचमेदेवाऽइन्द्रंश्चमेयज्ञेनंकल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

ॐ मित्र इत्यस्य देवा ऋषयः । विराट् शक्करी छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ १७ ॥

भाष्यम्–(मित्रः) (वरुणः) धाता (त्वष्टा) (मरुतः) (विश्वदेवोः) (प्रसिद्धाः (प्रत्येकमिन्द्रः ।एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । (यजु० १८।२७) ॥१७॥

भाषार्थ—मित्रदेवता, इन्द्रं, वरुण, इन्द्र, धाता, इन्द्र, त्वष्टा, इन्द्र, मरुत, इन्द्र विश्वेदेवा देवता, और इन्द्रकी अनुकूलता यह सब इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्रदान करें ॥१७॥

मन्त्रः

पृथिवीचमऽइन्द्रंश्चमेन्तरिक्षञ्चमऽइन्द्रंश्चमेद्यौश्चंमऽ इन्द्रंश्चमेसमांश्चमऽइन्द्रंश्चमेनक्षंत्राणिचमऽइन्द्रंश्च- मेदिशंश्चमऽइन्द्रंश्चमेयज्ञेनंकल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

ॐ पृथिवी चेत्यस्य देवा ऋषयः । भुरिक्छक्करी छं० । अग्निर्देवता वि० पू० ॥ १८ ॥

भाष्यम्–(पृथिवी) पृथिवी (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षम् (द्यौः) दिवस्त्रलोक्यम् (समाः) वर्षाधिष्ठात्र्यो देवताः (नक्षत्राणि) अश्वन्यादीनि (दिशः) प्रागाद्याः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम्। (यजु० १८।१८) ॥१८॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पृथिवी प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अन्तरिक्षलोक प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको द्यौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वर्षाके अधिष्ठातृदेवता प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको नक्षत्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इन्द्र प्रदान करें, इस यज्ञके देवता लोग मुझको दिक् प्रदान करें इस यज्ञके फल से देवता लोग मुझको इन्द्र ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१८॥

मन्त्रः

अꣳशुश्श्चमेरश्मिश्श्चमेदाभ्यश्श्चमेधिपतिश्श्चम-उपाꣳशुश्श्चमेन्तर्यामश्श्चमऽऐन्द्रवायवश्श्चमे मैत्रा-वरुणश्श्चमऽ आश्श्विनश्श्चमेप्प्रतिप्प्रस्थानश्श्चमेश-क्रश्श्चमेमन्थीचमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ १९ ॥

ॐ अंशुरित्यस्य देवा ऋषयः। निच्यृदत्यष्टिश्छं०। अग्निर्देवता। वि० पू० ॥ १९ ॥

भाष्यम्–अथ ग्रहान् जुहोति, अश्वादयः सोमग्रहविशेषाः सोमप्रकरणे प्रसिद्धाः (अंशुः) 'रश्मिः) (अदाभ्यः) अदाभ्यस्यैव गृह्यमाणत्वदशायां पृथक्कृत्य ग्रहणे रश्मि शब्देन निर्देशः रश्मीनां तदग्रहणे साधनत्वात् अह्ना रूपे सूर्यस्य रश्मिषु इति ८।४८ मंत्र-लिंगात् (अधिपतिः) अधिपतिशब्देन निग्राह्यो विवक्षितः तस्य ज्येष्ठत्वादाधिपत्यम्। 'ज्येष्ठो वा एष ग्रहाणाम्' इतिश्रुतेः (उपांशुः) (अन्तर्यमः) (ऐन्द्रवायवः) (मैत्रावरुणः) (आश्विनः) (प्रतिप्रस्थानः) प्रतिप्रस्थानशब्देन निग्राह्यो विविक्षितः (शुक्रः) (मन्थी) एते प्रसिद्धाः ग्रहा : (मे) मम (यज्ञेन) (कल्पन्ताम्) क्लृप्ता भवन्तु। (यजु० १८।१९) ॥१९॥

भाषार्थ—इसके फलसे देवतालोग मुझको अंशु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको रश्मि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अदाभ्य प्रदान करें, इस

यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको निग्राह्य प्रदान करें, इस यज्ञके फल से देवतालोग मुझको उपांशु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अन्तर्याम प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ऐन्द्रवायव ग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मैत्रावरुण प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको आश्विन प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्रतिप्रस्थान प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शुक्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको मंथीग्रह प्रदान करें, यह सब यज्ञके ग्रह-पात्र हैं इनकी प्राप्ति यज्ञ करनेकी सामर्थ्य है ।।१९।।

मन्त्रः

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मऽ ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारीयोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

ॐ आग्रयण इत्यस्य देवा ऋषयः । निच्यृदत्यष्टिश्छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २० ॥

भाष्यम्—(आग्रयणः) (वैश्वदेवः) प्रातःसवनगतः आद्यो वैश्वदेवः (ध्रुवः) ध्रुवनाम ग्रहः (वैश्वानरः) (ऐन्द्राग्नः) महावैश्वदेवः तृतीयसवनगतः (मरुत्वतीयाः) महाभक्त्वयीताः (निष्केवल्यः) सावित्रः (सारस्वतः) अभिषेचनीये सरस्वतीनामपां ग्रहणमेव सारस्वतो ग्रहः सारस्वतं ग्रहं गृह्णातीति तत्राम्नानात् (पात्नीवतः) (हारियोजनः) एते मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) (यजु० १८।२०) ।।२०।।

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको आग्रयण ग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वैश्वदेव प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ध्रुवग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वैश्वानर प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ऐन्द्राग्न प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको वैश्वदेव प्रदान करें, इस यज्ञके देवतालोग मुझको मरुत्वतीय प्रदान करें, इसयज्ञके फलसे देवतालोग मुझको निष्कैवल्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सावित्र प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सारस्वत ग्रह प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पात्नीवत ग्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको हारियोजन ग्रह प्रदान करें ।।२०।।

मन्त्रः

स्रुचश्श्चमेचमसाश्श्चंमेव्वायव्यानिचमेद्द्रोणकलशश्श्चं-मेग्ग्रावाणश्श्चमेधिषवणेचमेपूतभृच्चमऽआधवनीयश्श्च-मेवेदिश्श्चमेबर्हिश्श्चंमेवभथश्श्चंमेस्वगाकारश्श्चंमेयज्ञेनं-कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

ॐ स्रुच इत्यस्य देवा ऋषयः । विराट् धृतिश्छं० । अग्निर्देवता वि० पू० ॥ २१ ॥

भाष्यम्-(स्रुचः) जुह्वादयः (चमसाः) चमसानि ग्रहपात्राणि (वायव्यानि) पात्रविशेषाः (द्रोणकलशः) (ग्रावाणः) (अधिषवणे) काष्ठफलके (पूतभृत्) (आधवनीयः) द्वौ सोमपात्रविशेषौ (वेदिः) (बर्हिः) (अवभृथः) (स्वगाकार) शम्युवाकः तेन यथास्वं देवतानां हरिरंगीकारात् । एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् (यजु १८।२१) ॥२१॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको स्रुक् प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चमस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वायव्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको द्रोणकलश प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ग्रावा प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अधिषवण प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पूतभृत् प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको, आधवनीय प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको वेदि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बर्हिप्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अवभृथ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको शम्युवाकनाम प्रदान करें ॥२१॥

मन्त्रः

अग्निश्श्चंमेघर्म्मश्श्चंमेर्क्कश्श्चंमे सूर्य्यश्श्चमेप्प्राणश्श्चमे-श्श्वमेधश्श्चमेपृथिवीचमेदितिश्श्चमेऽदितिश्श्चमेद्यौश्श्चमेङ्गुलंय-श्शक्क्वरयोदिशश्श्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

ॐ अग्निरित्यस्य देवा ऋषयः भुरिक्छक्करी छन्दः। अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २२ ॥

भाष्यम्—कण्डिकाद्वये यज्ञक्रतुहोमः। अथैतान्यज्ञक्रतुञ्जुहोत्यग्निश्च म इति ९।३।३।१ श्रुतेः। (अग्निः) चीयमानो वह्निरग्निष्टोमो वा (घर्मः) प्रवर्ग्यः (अर्कः) इन्द्रायार्कवते पुरोडाशमिति विहितो यागोऽर्कः (सूर्यः) सौर्यं चरुमिति विहितः सूर्यः (प्राणः) गवामयनम् (अश्वमेधः) प्रसिद्धः (पृथिवी) पृथिवी (दितिः) (अदितिः) अदीना देवमाता (द्यौः) दिवः एते देवविशेषाः (अंगुल्यः) विराटपुरुषावयवाः (शक्वरयः) शक्तयः (दिशः) प्राच्याद्याः (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) (यजु० १८।२२) ॥२२॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चीयमान अग्नि वा अग्निष्टोम प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्रवर्ग्य प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पुरोडाशसंबंधि यज्ञ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सूर्यसंबंधि चरु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्राण (गवामयनसत्र) प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अश्वमेध यज्ञ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पृथिवी प्रदान करें; इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको दिति प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अदिति प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको द्युलोक प्रदान करें,इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको अंगुलि प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शक्तियें प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको प्राचीआदिदिशाओंकी अनुकूलता प्रदान करें ॥२२॥

मन्त्रः

व्रतञ्चमऽऋतवश्चमेतपश्चमेसंवत्सरश्चमेहोरात्रेऽऊर्वष्ठीवेबृहद्रथन्तरेचमे यज्ञेनकल्पन्ताम् ॥२३॥

ॐ व्रतमित्यस्य देवा ऋषयः । पंक्तिश्छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २३ ॥

भाष्यम्- (व्रतम्) नियमः (ऋतवः) वसन्तादयः (तपः) कृच्छ्रचान्द्रायणादि (संवत्सरः) प्रभवादिः (अहोरात्र) दिर्नदिशे (ऊर्वष्ठीवे) ऊरू चाष्ठीवन्तौ जानुनी च ऊर्वष्ठीवे अवयवविशेषौ (बृहद्रथन्तरे) एतन्नामके सामनी (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । (यजु० १८।२३) ॥२३॥

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शरीरके नियम प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वसन्त आदि ऋतु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग

मुझको तप (कृच्छ्रचान्द्रायणआदि) प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको संवत्सर प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको दिनरात प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ऊरु और जानु प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको बृहद्रथन्तर साम प्रदान करें ।।२३।।

मन्त्रः

एकांचमेतिस्रश्चमेतिस्रश्चमेपञ्चचमेपञ्चचमेसप्तचमे सप्तचमेनवचमेनवचमऽएकादशचमऽएकादशचमे त्रयोदशचमेत्रयोदशचमेपञ्चदशचमेपञ्चदशचमेसप्त-दशचमेसप्तदशचमेनवदशचमेनवदशचम एकविꣳश-तिश्चमऽएकविꣳशतिश्चमेत्रयोविꣳशतिश्चमेत्रयो-विꣳशतिश्चमेपञ्चविꣳशतिश्चमेपञ्च विꣳशतिश्चमे-सप्तविꣳशतिश्चमेसप्त-विꣳशतिश्चमेनवविꣳशति-श्चमेनवविꣳशतिश्चमऽएकत्रिꣳशच्चमऽएकत्रिꣳश-च्चमेत्रयस्त्रिꣳशच्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

ॐ एकाचेत्यस्यदेवा ऋषयः । पूर्वार्द्धस्य संकृतिश्छन्दः । शेषस्य विराट्संकृतिः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥२४॥

भाष्यम्—अयुग्मस्तोमहोमार्था मन्त्राः, यथायुजस्तोमान जुहोतीति ९।३।२ श्रुतः एकामादाय द्वितीयां विहाय तृतीयमादाय चतुर्थीं विहाय परित्यक्तसमसंख्याकेनात्त-विषमसङ्ख्याकेन मन्त्रेणायुग्मान् स्तोमान् जुहूयादित्यर्थः ।आदरातिशयद्योतनार्था सर्वत्र पुनरुक्तिः। अयुग्मस्तोमहोमैः सर्वकामावाप्तिः ।तथा च श्रुतिः— "एतद्वै देवाः सर्वान्कामानाप्ता युग्भिः स्तोमैः स्वर्गं लोकमायंस्तथैवैतद्यजमानः सर्वान्कामानाप्ता युग्भिः स्तोमैः स्वर्गं लोकमेति "इत्यादि । एका च मेति सुगमम् । (यजु० १८।२४) ।।२४।।

भाषार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको एक प्रदान करें, इस यज्ञके फल देवता लोग मुझको तीन प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पांच प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सात प्रदान करें,इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको नौ, प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ग्यारह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको तेरह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पंद्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सत्रह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उन्नीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको इक्कीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको तेईस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको पच्चीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सत्ताई प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको उन्तीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको एकतीस प्रदान प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोग मुझको तेंतीस प्रदान करें ।।२४।।

विशेष—इस मंत्रमें गणित विद्या भी कथन की है जय–धातुका संगितकरण अर्थ होनेसे किसी संख्याका जोड़ देना और दान अर्थसे व्यय कर देना है कारण गुणन भाग वर्ग घन मूल आदि यह सब इसीके अंतर्गत होते हैं, संख्याके जोड़नेको योग जैसे ५+५=१० और अनेकबार एकसौ संख्याके जोड़नेको गुण न कहते हैं जैसे ४+५=२० चारको पांच स्थानमें जोड़नेसे बीस होते हैं चारको चौगुना किया तो चारके वर्ग सोलह हुए इसी प्रकार अन्तरसे भाग उर्ग मूल घन आदि निष्पन्न होते हैं, तो संख्या बुद्धिमाननोंको यथायोग्य जाननी उचित है । मूलमात्र दिखलाया है, अंकगणित बीजगणित आदि सब संख्याएं इससे उत्पन्न होती हैं ।।२४।।

मन्त्रः

चतस्रश्चमेऽष्टौचमेऽष्टौचमेद्वादशचमेद्वादशचमेषोडशच-मेषोडशचमेविꣳशतिश्चमेविꣳशतिश्चमे चतुर्विꣳशतिश्चमेचतुर्विꣳशतिश्चमेऽष्टाविꣳशतिश्चमेऽष्टाविꣳशतिश्चमेद्वात्रिꣳशच्चमेद्वात्रिꣳशच्चमेषट्त्रिꣳशच्च-मेषट्त्रिꣳशच्चमेचत्वारिꣳशच्चमेचत्वारिꣳशच्चमेचतुश्चत्वारिꣳशच्चमेचतुश्चत्वारिꣳशच्चमेऽष्टाचत्वारिꣳशच्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

ॐ चतस्रश्चेतयस्य देवा ऋषयः । उत्कृतिश्छन्दः । अग्नि-र्देवता । वि० पू० ॥ २५ ॥

भाष्यम्–एककण्डिकया युग्मस्तोमान् जुहोति । अथ योग्यतो जुहोति चतस्रश्चम इति ९।३।३।४ तत्फलं स्वर्गप्राप्तिः एतद्वै छन्दाꣳस्यद्रुवन् यातयामा वा अयुजस्तोमायुग्म-भिर्वयꣳस्तोमैः स्वर्गं लोकमयामेति तथैतद्यजमानो युग्मभिस्तोमैः स्वर्गं लोकमेति " श्रुतेः– पूर्वपूर्वमुत्तरेण सम्बन्धेनातिवृक्षारोहणवत तथा च श्रुतिः 'पूर्वं पूर्वमुत्तरेणोत्तरेण संयुनक्ति। यथा वृक्षं रोहन्नुत्तरामुत्तराꣳ शाखाꣳ समालम्भ रोहेत्तादृक्तत् " इति । अत्रोक्ता संख्या संख्ये–यनिष्ठा । एते यज्ञेन कल्पन्ताम् । (यजु० १८।२५) ।।२५।।

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चार संख्याके स्तोम प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको आठ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बारह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सोलह प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चौबीस प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अट्ठाईस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको बत्तीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको छत्तीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चालीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चौवालीस प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अडतालीस प्रदान करें*।।२५।।

मन्त्रः

त्र्यविश्चमेत्र्यवीचमेदित्यवाट्चमेदित्यौहीचमेपञ्चाविश्चमेपञ्चावीचमेत्रिवत्सश्चमेत्रिवत्साचमेतुर्य्यवाट्चमेतुर्य्यौहीचमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

ॐ त्र्यविश्चेत्यस्य देवा ऋषयः ब्राह्मी बृहती छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २६ ॥

भाष्यम्–कण्डिकाद्वयं वयोहोमे विनियुक्तम् । तथा च श्रुतिः– अथवा जुहोति त्र्यविश्च म इति पशवो वै वयाꣳसि पशुभिरेवैनमेतदन्तेन प्रीणात्यथो पशुभिरवैनमेतदन्नेना-

---

* एक दो तीन चारसे इस बातका भाव भी सूचित होता है कि, एकासे वही एक अद्वितीया ब्रह्मशक्ति, दोसे दो सुवर्ण, तीनसे वेदत्रयी वा तीनकाल, चारसे चार वेद, पांचसे पांच वाण, छःसे छः ऋतु, सातसे सात सागर, आठसे आठ दिशा वा आठ लोकपाल वा आठ वसु लेने, नौसे अंक नौ इसी प्रकार आगे जानना ।

भिषिञ्चति' इति । अभिषणमासात्मकः कालः (त्र्यविः) त्रयोऽवयवो यस्य त्र्यविः सार्धसंवत्सरो वृषः तादृशी गौः (त्र्यवी) (दित्यवाट्) द्विसंवत्सरो वृषो दित्यवाट् तादृशी गौ- (दित्यौही) (पञ्चाविः) पञ्चावयो यस्य सः पञ्चाविः । सार्द्धद्विसंवत्सरो वृषः (पञ्चावी तादृशी गौः (त्रिवत्सः) त्रयो वत्सा यस्य सः त्रिवत्सः त्रिवर्षो वृषः (त्रिवत्सा) तादृशी गौ (तुर्यवाट्) सार्धत्रिवर्षो वृषः (तुर्यौही) तादृशी गौः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सम्पद्यन्ताम् । (यजु० १८।२६) ।।२६।।

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको डेढ़ वर्षकी आयुका बछड़ा प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको डेढ वर्षकी आयुकी बछिया प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको दो वर्षका वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको दो वर्षकी गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ढाई वर्षका वृक्ष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको ढाई वर्षकी गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तीन वर्षका वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको तीन वर्षकी गाय प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको साढेतीन वर्षका वृष प्रदान करें इस यज्ञके फलसे देवतालोग साढेतीन वर्षकी गौ प्रदान क़रें ।।६।।

मन्त्रः

पष्ठवाट्चमेपष्ठौहीचमऽउक्षाचमेव्वशाचमऽऋषभश्चमेव्वेहच्चमेनड्वाँश्चमेधेनुश्चमेयज्ञेनकल्पन्ताम् ।।२७।।

ॐ पष्ठवाडित्यस्य देवा ऋषयः । निचृद्ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २७ ॥

भाष्यम्–(पष्ठवाट्)षष्ठं वर्षचतुष्कं वहतीति पष्ठवाट् चतुर्वर्षो वृषः (पष्ठौही तादृशा गौः (उक्षा) सेचनक्षमो वृषः (वशा)वन्ध्या गौः (ऋषभः) अतियुवा वृषः (वेहत्) गर्भघातिनी गौः (अनडवान्) अनः शकटं वहतीत्यनडवान् शकटवाह नक्षमोवृषः (धेनुः) नवप्रसूता गौः एते (मे) मम (यज्ञेन कल्पन्ताम्) स्वस्वव्यापारसमर्था भवन्तु ।यद्वा एते यज्ञेन मम कल्पन्ताम् । मह्यनुपभोगक्षमा भवन्त्वित्यर्थः। एवं पूर्वत्र । (यजु० १८।२७) ।।२७।।

भावार्थ—इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चार वर्पका वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको चार वर्षकी गौर प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको सेचनसमर्थ वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको वन्ध्या गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको अतियुवा वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको गर्भघातिनी गौ प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवतालोग मुझको शकट (छकड़ा) वहन

करनमें समर्थ वृष प्रदान करें, इस यज्ञके फलसे देवता लोक मुझको नवप्रसूता गौ प्रदान करें, यह सब यज्ञके संपादनके निमित्त हैं ।।२७।।

मन्त्रः

वाजा॑य॒स्वाहा॑प्प्रस॒वाय॒स्वाहा॑पिजाय॒स्वाहा॒क्रत॑वे॒स्वा-हा॒व्वस॑वे॒स्वाहा॑ह॒र्प्पत॑ये॒स्वाहा॒ह्नेमु॒ग्ग्धाय॒स्वाहा॒मु॒ग्ग्धा-य॑वैनर्ठ॒शिनाय॒स्वाहा॒व्विनर्ठ॒शिनऽआन्त्यायनाय॒स्वा-हान्त्या॑य भौ॒वनाय॒स्वाहा॒भुव॑नस्य॒पत॑ये स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑प्प्रजाप॑तये॒स्वाहा॑॥ इ॒यन्ते॒राण्मि॒मत्रा॒य॑स्य॒ न्तासि-य॒म॑नऽऊ॒र्ज्जे॑त्वा॒व्वृष्ट्यै॑त्वा॒प्प्रजाना॒न्त्वाधि॑पत्याय२८।

ॐ वाजायेत्यस्य देवा ऋषयः । पूर्वार्द्धस्यार्ची बृहती छं० । अग्नि देवता । वि० पू० ॥ २८ ॥

भाष्यम्–अथ नामग्राहहोमः । तथा च श्रुतिः (अथ नामग्राहं जुहोति वाजायस्वाहेत्येतद्वै देवाः सर्वान्कामानाप्त्वाथैतमेव प्रत्यक्षं प्रीणातीति ९।३।३।८) (वाजाय) वाजोऽन्नं तस्मै (स्वाहा) स्वाहा वाजादीनि चैत्रादिमासानां नामानि तन्नाम गृहीत्वा होतव्यमित्यर्थ । अन्नप्राचुर्याच्चैत्रोऽअन्नरूपः । (प्रसवाय) अनुज्ञारूपाय जलक्रीडादौ अभ्यनुज्ञादानात्प्रसवो वैशाखः तस्मै० । (अपिजाय) अप्सु जामतऽइत्यपिजः जलक्रीडारतत्वादपिजो ज्येष्ठः तस्मै० (क्रतवे) यागरूपाय चातुर्मास्यादियागप्राचुर्यात् क्रतुराषाढः तस्मै० (वसवे) वासयति वसुः चातुर्मास्ये यात्रानिषेधाद्वसुः श्रावणः। (अहर्पतये) दिनस्वामिने सूर्यरूपाय तापकरत्वाद्भाद्रपदस्याहर्पतित्वं तस्मै०। (मुग्धाय) अहे तुषारादिना मोहरूपाय दिवसाय तुषारबाहुल्यान्मुग्धमह आश्विनः ।(अमुग्धाय वैनंशिनाय) विनश्यतीति विनंशी विनंश्येव वैनंशिनः स्वार्थेकोऽण अल्पघटिकावत्त्वेन विनाशशीलाय कार्तिकाय स्नाननियमादिना पापनाशकत्वादमुग्धाय मोहनिवर्तकाय कार्तिकाय० (अवनंशिने अन्त्यायनाय) न विनश्यतीत्य विनंशी तस्मै विनाशरहिताय अन्ते सर्वेषां नाशे भवमन्त्यं तदयनं चेत्यन्त्यायनं तत्र भवः आन्त्यायनस्तस्मै ।सर्वनाशेऽप्यवशिष्टायात एवाविनंशिने विष्णुरूपाय मार्गशीर्षाय "मासानां मार्गशीर्षोस्मीति । भगवद्गी० १०।३५" (अन्त्याय भौवनाय) भुवनानामयं भौवनः अन्ते स्वरूपे भव आन्त्यस्तस्मै । लोकस्वरूपपुष्टिकरत्वात्तत्र भवत्वं जाठरा

नेर्दीप्तिकरत्वेन पुष्टिकरत्वं पौषस्य ।(भुवनस्पपतये) भूतजातस्य पालकाय माघाय-स्नानादिना पुण्यजनकत्वेन पालकत्वं माघस्य (अधिपतये) अधिकपालकाय फाल्गुनाय वर्षान्तत्वात् (प्रजापतये) द्वादशमासाधिष्ठात्रे प्रजापतिनामकाय देवाय (स्वाहा) सुहुत-मस्तु ।हे अग्ने (इयम्) (ते) तव (राट्) राज्यम् । यत्र यागाः क्रियन्ते तत्तवैव राज्यम्। किञ्च-हे अग्ने त्वं (मित्राय) मित्रस्य सख्युर्यजमानस्य (यन्ता) नियामकः (असि) असि-षष्ठचर्थे चतुर्थी मित्रायेति । तथा त्वम् (यमनः) यमयतीति यमनः अग्निष्टोमादिकर्मसु सर्वान्नियमयन् अतः (ऊर्जे) विशिष्टान्नरसाय (त्वा) त्वामभिषिञ्चामीति शेषः। तथा (वृष्ट्यै)वर्षणाय (त्वा) त्वामनुषिञ्चामीति तथा (प्रजानामाधिपत्याय) प्रजास्वामि-त्वाप्त्यै त्वामभिषिञ्चामि वसोधारया "प्रजानामाधिपत्यायेत्यन्नं वा ऊर्गन्नं वृष्टिरन्नेनैवैन मेतत्प्रीणाति" इति ९।३।३।१०–११ श्रुतेः । (१८।१८) ।।२८।।

भावार्थ—चैत्रमासके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, वैशाखके निमित्त श्रेष्ठ होम हो ज्येष्ठ के निमित्त श्रेष्ठ होम हो, आषाढके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, श्रावणके निमित्त श्रेष्ठ होम हो भाद्रपदके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, आश्विनके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, कार्तिकके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, मार्गशीर्षके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, पौषके निमित्त श्रेष्ठ होम हो माघके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, फाल्गुनके निमित्त श्रेष्ठ होम हो,संवत्सरके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, भुवनपतिके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, अधिपतिके निमित्त श्रेष्ठ हो हो, द्वादश मही-नोंके अधिष्ठावान् प्रजापतिके निमित्त श्रेष्ठ होम हो, हे प्रजापते यह तुम्हारा राज्य है अर्थात् जहां यज्ञ होता है वह सब तुम्हारा ही राज्य है, अग्निष्टोमादि कर्मोंमें सबके नियन्ता तुम सखारूप इस यजमानके नियामक हो विशिष्ट अन्नरसके निमित्त तुमको वसुधारासे सिंचित करता हूं, "अग्निमें आहुतिदानसे अच्छी वर्षा होती है" प्रजाके स्वामित्वप्राप्तिके निमित्त वसुधारासे तुमको अभिषेक करता हूं ।।२८।।

मन्त्रः

आयुर्य्यज्ञेनकल्पतांम्प्राणोयज्ञेनकल्पताञ्चक्षुर्य्यज्ञेन-कल्पताᳪंश्रोत्रं यज्ञेनकल्पतांव्वाग्यज्ञेनकल्पता-म्मनोयज्ञेनकल्पतामात्मायज्ञेनकल्पतांब्रह्मायज्ञेन-कल्पताञ्ज्योतिर्य्यज्ञेनकल्पताᳪंस्वर्य्यज्ञेनकल्पता-म्पृष्ठंयज्ञेनकल्पतांय्यज्ञोयज्ञेनकल्पताम् । स्तोमश्श्च

यजुंश्चऽऋक्चसामचबृहच्चं रथन्तरञ्चंस्वर्देवाऽअ-
गन्मामृताऽअभूमप्रजापतेःप्रजाऽअभूमवेट्-
स्वाहां ॥ २९ ॥

इतिसंहितायांरुद्रपाठेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ॐ आयुरित्यस्य देवा ऋषयः । विराट् विकृतिश्छन्दः ।
अग्निर्देवता । वि ० पू० ॥ २९ ॥

भाष्यम्—कल्पहोमः कल्पतामिति लिङ्गात् (अथ कल्पाञ्जुहोति ९।३।३।१२) (यज्ञेन) निमित्तेन (आयुः) जीवनकालः (कल्पताम्) साध्यतां प्राप्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (प्राणः) प्राणः कल्पताम्। साध्यताम् (यज्ञेन) निमिनेन (चक्षुः) चक्षुः (कल्पताम्) साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (श्रोत्रम्) श्रोत्रम् (कल्पताम्) साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (वाक्) वाक् (कल्पताम्) साध्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (मनः) मनः '(कल्पताम्) प्राप्यताम् (यज्ञेन) निमित्तेन (आत्मा) देहः "आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः" ।इति स्मृतेः । (यज्ञेन) निमित्तेन (ब्रह्मा) वेदः (कल्पताम्) साध्यताम् (ज्योतिः) स्वयंप्रकाशः परमात्मा (यज्ञेन) निमित्तेन (कल्पताम्) साध्यताम्। पुण्यकर्मानुष्ठानं परमात्मज्ञाने कारणम् । (स्वः) स्वर्गः (यज्ञेन कल्पताम्) साध्यताम् (पृष्ठम्) स्वर्गस्थानं स्तोत्रं वा (यज्ञेन कल्पताम्) यज्ञेन साध्यताम् (यज्ञः) (यज्ञेन) (कल्पताम्) यज्ञो यज्ञेनैव क्लृप्तो भवतु "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" इति श्रुतेः (स्तोमम्) स्तोमस्त्रिवृत्पञ्चदशादि (यजु०) अनियतपादो मंत्रः (ऋक) नियतपाद । (साम) गीतिप्रधानम् (बृहद्रथन्तरः) बृहद्रथन्तरे तद्विशेषौ वसोर्धारयैवमग्निमभिषिच्यात्मानां यजमानः प्रशंसति, वयं यजमानाः (देवाः) देवा भूत्वा (स्वः) स्वर्गम् (अगन्म) गतवन्तः गत्वा च (अमृताः) अमरधर्मिणः (अभूमम्) अभूम (प्रजापतेः) हिरण्यगर्भस्य (प्रजाः) प्रजाः (अभूम) अभूमेति फलवचनम्। अनुक वसोर्धारायाः सर्वकामप्राप्तिहेतुत्वमुक्तम्। (वेट् स्वाहा) वसोर्धाराहोमार्थो मंत्रः वेडिति वषट्कारः।" वषट्कारो हैष परोक्षं यद्वेट्कारो वषट्कारेण वा वै स्वाहाकारेण वा देवेभ्योऽन्नं प्रदीयत' इति ९।३।३।१४ श्रुतेः। इति वसोर्धाराहोममन्त्राः समाप्ताः । (यजुः० १८।२९)।।२९।।

भाषार्थ—इस यज्ञके प्रसादसे आयुकी वृद्धि हो, इस यज्ञके प्रसादसे प्राण रोगरहित होकर बलिष्ठ हो, इन यज्ञके प्रसादसे नेत्र इंद्रिय उत्कृष्टताको प्राप्त हो, इस यज्ञके प्रसादसे श्रोत्रइंद्रियकी श्रेष्ठता सिद्ध हो, इस यज्ञके प्रसादसे वागिंद्रियकी श्रेष्ठता सिद्ध हो, इस यज्ञके प्रसादसे मनकी स्वस्थता हो, इस यज्ञके प्रसादसे आत्मा प्रसन्न हो, इस यज्ञके प्रसादसे ब्रह्म प्रसन्न हो, इस यज्ञके प्रसादसे ज्योति प्राप्त हो, इस यज्ञके प्रसादसे सुख प्राप्त हो, इस

यज्ञके प्रसादसे परमसुख प्राप्त हो, इस यज्ञसे प्रसादसे महायज्ञ करनेकी सामर्थ्य प्राप्त हो-इस यज्ञके प्रसादसे स्तोम यजु ऋक् साम बृहत् और रथान्तर साम यह सबही प्रसन्न हों, इस यज्ञके प्रसादसे हम स्वर्गीय देवत्व प्राप्त करने तथा अमर होनेमें समर्थ हों, इस यज्ञके प्रसादसे हम हिरण्य गर्भ प्रजापतिकी प्रियतम प्रजा हो सकें। कथन किये हुए समस्त देवताओंकी प्राप्तिके निमित्त ही यह वसोर्धारा हवन आहुत हुआ यह समस्त आहुतियां भलीप्रकार गृहीत हों ॥२९॥

यज्ञ और उसका साधन तथा प्राणियोंको जो कुछ आवश्यकता होती है उसका वर्णन इन मंत्रोंमें किया गया है यज्ञके फलसे यह ऊपर कही ३४७ वस्तु संपन्न हो सकती है यह सब कुछ यज्ञके निमित्त हो संपादन हों। मनुष्यका सर्वस्व ईश्वरका है और यज्ञसे सबकुछ प्राप्त हो सकता है इस प्रकार यज्ञके निमित्त सब संपन्न हों यही प्रार्थना है ॥२९॥

इति श्रीरुद्राष्टके पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य भाषा भाष्यसमन्वितो-ऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

मन्त्रः

॥ हरिः ॐ ॥ ऋचंव्वाचम्प्रपद्ये मनोयजुः प्रपद्ये साम-प्प्राणम्प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रम्प्रपद्ये ॥ व्वागोजः सहौजो मयि-प्प्राणापानौ ॥ १ ॥

मन्त्रः

ॐ ऋचं वाचमित्यस्य दधीच ऋषिः। जगती छन्दः। लिङ्गोक्ता देवता। शान्तिपाठे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्—(ऋचम्) ऋग्रूपाम् (वाचम्) वाचम् (प्रपद्ये) प्रविशामि शरणं व्रजामि (यजुः) यजूरूपम् (मनः) मनः (प्रपद्ये) प्रविशामि (प्राणम्) प्राणः रूपम् (साम) साम (प्रपद्ये) प्रविशामि (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रियम् (श्रोत्रेन्द्रियं च (प्रपद्ये) प्रविशामि (वाक्) वागिन्द्रियम् (ओजः) मानसं बलं धाष्टर्यम् (ओजः) शरीरं बलम् (प्राण पानौ) उच्छवासनिश्वासवायू च एते (सह) एकीभूताः सन्तः (मयि) मयि वर्तन्ते। वागादिग्रहणं सप्तदशावयवोपलक्षणं सप्तसप्तदशावयवं प्रजापते: लिङ्गं प्रपद्ये इत्यर्थः। त्रयी विद्यां लिंगशरीरं च प्रपन्नं प्रवर्ग्यो नाशयेदिति भावः (यजु० ३६।१) ॥१॥

भावार्थ–ऋचारूप वाणीकी शरण होता हूँ, यजु:रूप मनकी शरण होता हूँ प्राण-रूप सामकी शरण होता हूँ, चक्षुइन्द्रिय, श्रोत्रइन्द्रियकी शरण होता हूं, मनका बल शारी-रिक बल उछ्‌वास निश्वास वायु यह स्वस्थ होकर मुझमें स्थित हों ।।१।।

विशेष–वागादिग्रहणसे सप्तदश अवयवका उपलक्षण है, सप्तदश अवयव युक्त प्रजापतिका शरीर है, उसकी शरण होता हैं, त्रयीविद्यारूप लिङ्ग शरीर है, परमात्माकी कृपासे सब अवयव बल संपन्न हों ।।१।।

मन्त्रः

यन्मेछिद्द्रञ्चक्षुषोहृदयस्यमनसोव्वातितृणम्बृहस्प्पति र्म्मैतद्दधातु ॥ शन्नोभवतु भुवनस्ययस्प्पतिः ॥२॥

ॐ यन्म इत्यस्य दधीच ऋषिः । पंक्तिश्छन्दः बृहस्पति-र्देवता । शान्तिपाठे विनियोगः ॥ २ ॥

भाष्यम्–(मे) मम (चक्षुषः) चक्षुरिन्द्रियस्य) (यत्) यत् (छिद्रम्) अवखण्डनं जातं प्रवर्ग्याचरणेन (हृदयस्य) बुद्धेर्वा यत छिद्रं जातम् (मनसः) मनसः (वा) यत् (अतितृणम्) अतिहिंसितम् ।प्रवर्ग्याचरणेन यच्चक्षुर्बुद्धिमनसां व्याकुलत्वं जातम् (बृहस्पतिः)बृहतां पतिर्देवगुरुः (मे) मम (तत्) छिद्रमतितृणं (दधातु) संदधातु छिद्रं निर्वर्तयतु (भुवनस्य)भूतजातस्य (यः) (पतिः) अधिपति–प्रवर्ग्यरूपो यज्ञः सः (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपः(भवतु)भवतु ।बृहस्पतिना छिद्रापाकरणात्प्रवर्ग्यः कल्याणरूपो ऽस्त्वित्यर्थः। (यजु० ३६।२)।।२।।

भावार्थ––मेरी चक्षु इन्द्रियकी जो न्यूनता है परमात्मा मेरी उस न्यूनता मन बुद्धिकी व्याकुलताको निवृत्त करो, हमारे निमित्त कल्याण हो, जो संपूर्ण भुवनोंका अधिपति है वह हमको सुखरूप हो, अर्थात् त्रिभुवनके अधिपति देवता हमारा कल्याण करें ।।२।।

मन्त्रः

ॐभूर्ब्भुवःस्वः तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गोदेवस्य धीमहि॥ धियोयोनः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

ॐ तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । निचृद्गायत्री छन्दः । सविता देवता । वि० पू० ॥ ३ ॥

भाष्यम्–यः सविता देवः (नः) अस्माकम् (धियः) बुद्धिः (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्–(तत् तत्तस्य सर्वासु श्रुतिषु प्रसिद्धस्य (देवस्य) द्योतमानस्य (सवितुः) सर्वान्तर्यामितया प्रेरकस्य जगत्स्रष्टुः परमेश्वरस्यात्मभूतम् (वरेण्यम्) सर्वैरुपास्यतया ज्ञेयतयाच सम्भजनीयम् (भर्गः) अविद्यातत्कार्ययोर्भर्जनाद्भर्गः स्वयञ्ज्योतिः परब्रह्मात्मकं तेजः (धीमहि) तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोह वयं ध्यायेम । यद्वा-तदिति भर्गोविशेषण सवितर्देवस्य तत्तादृशं भर्गो धीमहि किं पदपेक्षायामाह-य इतीति लिंगव्यत्ययः ।यद्भर्गो धिया 'प्रचोदयादिति तद्ध्यायेमेति समन्वयः। यद्वा-यः सविता सूर्यः 'धियः' कर्माणि 'प्रचोदयात्' प्रेरयति तस्य 'सवितुः' सर्वस्य प्रसवितुर्देवस्य द्योतमानस्य सूर्यस्य तत्सर्वैर्दृश्यमानतया प्रसिद्धं वरेण्य सर्वैः सम्भजनीयं 'भर्गः' पापानान्तापाकन्तेजोमण्डलम् 'धीमहि' ध्येयतया मनसा धारयेयम यद्वा–भर्गः शब्देनान्नमभिधीयते । यः सविता देवो धियः प्रचोदयति तस्य प्रसादाद्भर्गो–न्नादिलक्षणं फलं धीमहि धारयामः। तस्याधारभूता भवेमेत्यर्थः ।भगवान शंकराचार्यस्तु–'अथ सर्वदेवात्मनः सर्वशक्तेः सर्वावभासकतेजोमयस्य परमात्मनः सर्वात्मकत्वद्योतनार्थं सर्वात्मकत्वप्रतिपादकगायत्री महामन्त्रस्योपासनप्रकारः प्रकाश्यते तत्र गायत्रीं प्रणवादिसप्तव्याहृत्युपेतां शिरः समेती सर्ववेदसारमिति वदन्ति । एवं विशिष्टा गायत्री प्राणायामैरुपास्या सप्रणवव्याहृतित्रयोपेता प्रणवान्ता गायत्री जपादिभिरुपास्या तत्र शुद्धगायत्री प्रत्यक्ब्रह्मैक्यबोधिका 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इति नोऽस्माकं धियो बुद्धिः यः प्रचोदयात् प्रेरयेदिति सर्वबुद्धिः संज्ञान्तःकरणप्रकाशकसर्वसाक्षी प्रत्यगात्मेत्युच्यते । तस्य प्रचोदयाच्छब्दनिर्दिष्टस्यात्मनः स्वरूपभूतं परब्रह्म तत्सवितुरित्यादिपदैर्निर्दिश्यते । तत्र "ॐ त्तत्सदितिर्निर्द्दिशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः"इति तच्छब्देन प्रत्यग्भूतं स्वतः सिद्धं परब्रह्मोच्यते, सवितुरिति सृष्टिस्थितिलयलक्षणकस्य सर्वप्रपञ्चस्य समस्तद्वैतविभ्रमस्याधिष्ठानं लक्ष्यते। वरेण्यमिति सर्ववरणीयं निरतिशयानन्दरूपम् । भर्ग इत्यविद्यादिदोषभर्जनात्मकज्ञानैकविषयत्वम् देवस्येति सर्वद्योतनात्मकाखण्डचिदेकरसम् । सवितुर्देवस्येत्येत्यत्र षष्ठयों राहोः शिरोवदौपचारिकः । बुद्ध्यादिसर्वदृश्यसाक्षिलक्षणं यन्मे स्वरूपन्तत्सर्वाधिष्ठानभूतं परमानन्दं निरस्तसमस्तानर्थरूपं स्वप्रकाशचिदात्मकं ब्रह्मत्येवं धीमहि ध्यायेम । एवं सति सहब्रह्मणा स्वविवर्तजडप्रपञ्चेन रज्जुसर्पन्यायेनापवादसामानाधिकरण्यरूपमेकत्वं सोयमिति न्यायेन सर्वसाक्षि प्रत्यगात्मनो ब्रह्मणा सह तादात्म्यरूपमेकत्वंभवतीति ।सर्वात्मकब्रह्मबोधकोऽयं गायत्रीमंत्रःसम्पद्यते । सप्तव्याहृतीनामयमर्थः । भूरितिसन्मात्रमुच्यते भुवइति–सम्भावयति प्रकाशयतीति व्युत्पत्त्या चिद्रूपमुच्यते सुव्रियत इति व्युत्पत्त्या स्वरिति, सुष्ठु सर्वैर्व्रियमाणसुखस्वरूपमुच्यते, मह इति–महीयते पूज्यत इति व्युत्पत्त्या सर्वातिशयत्वमुच्यते, जन इतिजनयति इति जनः सकलकारणत्वमुच्यते, तप इति-सर्वतेजोरूपत्वम्, सार्धमिति–सर्वबाधारहितत्वम्।एतदुक्तं भवति-यल्लोकेस्वरूपं तदोङ्कारवाच्यं ब्रह्मैव आत्मनोऽस्य सच्चिद्रूपस्य भावादिति, अथ भूरादयः सर्वलोकाः ॐ कारवाच्याद्ब्रह्मात्मकाः तद्व्यतिरिक्तं किञ्चिदस्तीति व्याहृतयोऽपि सर्वात्मकब्रह्मबोधिकाः गायत्रीशिरसोऽप्ययमेवार्थः "आपोज्योतीरसो मृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम्" आप इत्याप्नोतीति व्युत्पत्त्या व्यापित्वमुच्यते । ज्योतिरितिप्रकाशरूपत्वम् । रस इति सर्वातिशयत्वम् ।अमृतमिति–

मरणादिसंसारतिर्मुक्तत्वं सर्वव्यापि सर्वप्रकाशकसर्वोत्कृष्टनित्यमुक्तमात्मरूपं सच्चिदानंदात्मक यदोङ्कारवाच्यं ब्रह्म तदमहस्मीति गायत्रीमन्त्रार्थः । "गुहाशयब्रह्महुताशनोहं कर्तेवमंशाख्यहविर्हृतं सत् । विलीयते नेदमहं भवानीत्येवप्रकारस्तु विभिद्यतेऽत्र ।। यदस्ति यद्भाति तदात्मरूपं नान्यत्ततो भाति न चान्यदस्ति ।स्वभावसंवित्प्रतिभाति केवला ग्राह्य ग्रहीतेति मृषैव कल्पना"।। इति शंकरभगवततो : गायत्रीभाष्यम् । योगियाज्ञवल्क्यस्तु–

तच्छब्देन तु यच्छब्दो बोद्धव्यः सततं बुधैः ।
उदाहृते तु यच्छब्दे तच्छब्दः स्यादुदाहृतः ।।१।।
सविता सर्वभूतानां सर्वभावान्प्रसूयते ।
सवनात्पावनाच्चैव सविता तेन चोच्यते ।।२।।
दीव्यते क्रीडते यस्माद् द्योतते रोचते दिवि ।
तस्माद्देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैवतैः ।।३।।
चिन्तयामो वयं भर्गं धियो यो नः प्रचोदयात् ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु बुद्धिवृत्तीः पुनःपुनः ।।४।।
भ्रस्जपाके भवेद्धातुर्यस्मात्पाटयते ह्यसौ ।
भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगच्चान्ते हरत्यपि ।।५।।
कालाग्निरूपमास्थाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः ।
भ्राजते यत्स्वरूपेण तस्माद्भर्गः स उच्यते ।।६।।
भेति भीषयते लोकान् रेति रञ्जयते प्रजाः।
गत्या गच्छत्यजस्त्रं यो भगवान्भर्ग उच्यते ।।७।।
वरेण्यं वरणीयं च संसारभयभीरुभिः ।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वा मुमुक्षुभिः ।।८।।
जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च ।
ध्यानेन पुरुषो यस्तु दृश्यः स सूर्यमंडले ।।९।।

भाषार्थ—यह गायत्री मंत्र ही सर्वोपरि मंत्र है यही ब्रह्मकी उपासना वा ध्यानका परमं मंत्र है इससे सौ अर्थ मिलते हैं संस्कृतमें कई अर्थ हमने लिखे हैं संक्षेपसे भाषार्थ लिखते हैं । उस प्रकाशात्मक प्रेरक अन्तर्यामी विज्ञानानन्दस्वभाव, हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्न अथवा आदित्यके अन्तर स्थित पुरुष वा ब्रह्मके सबसे प्रार्थना किये हुए संपूर्ण पापके व संसारके आवागमन दूर, करनेमें समर्थ, सत्य ज्ञान आनन्द आदि तेजको हम ध्यान करते हैं जो सविता देव हमारी बुद्धियोंको सत्कर्मके अनुष्ठानके निमित्त प्रेरणा करता है, जगत्के उत्पन्न करनेवाले उन परमदेवताका जो कि भूर्लोक, भुवर्लोकस्वर्लोक व्यापी भर्ग है, उनका हम ध्यान करते हैं ।।३।।

विशेष—योगियाज्ञवल्क्यने जो अर्थ किया है उसका वर्णन करते हैं, उसका तेज हम ध्यान करते हैं, यहां तत् भर्गका विशेषण नहीं है, तथापि तत्के प्रयोगसे ही यत्का प्रयोग

हो जाता है, यही इस श्लोकका आशय है, कि तत्के साथमें यत् शब्द सदा जानना ।१।। संपूर्ण प्राणी और संपूर्ण भावोंका उत्पन्नकर्ता सवन और पवित्र करनेसे उसे सविता कहते हैं ।।२।। जिस कारण कि वह प्रकाशित होता क्रीडाकरता आकाशमें दीप्तिमान् होता सब देवताओंसे स्तुतिको प्राप्त होता है, इस कारण उसे देव कहते हैं ।।३।। हम उस भर्ग तेजका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धिवृत्तियोंको बारंबार धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें प्रेरणा करता है ।।४।। भ्रस्ज-धातु पकानेमें है जिस कारण यह पकाता शोभित दीप्तिमान् होता हुआ अंतमें जगत् को हरण करता है ।।५।। कालाग्निरूपमे स्थित होकर अग्निसूर्यमें स्थित अपने रूपसे प्रकाशित होता है, इस कारण उसको भर्ग कहते हैं ?।।६।। भकारसे सबलोकोंको भयभीत करता हुआ रसे प्रजाको प्रसन्न करता है,ज से जो निरन्तरगमनागमन करता है इस कारण उसको भर्ग कहते हैं, परमार्थचिन्तामें सविता और भर्गमें भेद नहीं है ।।७।। संसारके भयसे भीतहुए प्राणी जिसकी प्रार्थना करते हैं । जो यह सूर्यके अंतर्गत गर्भ है इसको मुमुक्षु–जन्म मृत्यु और दैहिक दैविक भौतिक दुःख इनके नाश करनेके निमित्त ध्यान करते हैं वह पुरुष सूर्यमंडलमें ध्यान करना चाहिये ।।८८।।९।।

इस प्रकार गायत्रीका माहात्म्य वर्णन करके उसीके महाप्रभावमें सात व्याहृतियोंका विशेष जानना । किस प्रकारका वह भर्ग है ? जो भूदादि सातलोकों को व्याप्त कर स्थित हो रहा है, अर्थात् भूः (भूमि) भुवः (अन्तरिक्ष) स्वः (स्वर्लोक) महः (महर्लोक) जनः (जनलोक) तपः (तपलोक) सत्यम् (सत्यलोक) इस प्रकार क्रमसे लोकों को व्याप्त करके वह भर्ग इन सातलोकोंको दीपकके समान प्रकाश करता है । अथवा सात महाव्याहृति ही भूरादिका भर्गादिसे भेद करके करती हैं, अर्थात् वह तेज कैसा जो (आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्) जल, ज्योति, रस, अमृत, ब्रह्म, भूः भुवः स्वः रूप है, उसका ध्यान करते हैं ।।९।।

मंन्त्रः

कयांनश्चित्रऽआभुंवदूतीसदावृंधुःसखां ।। कयाशचिंष्ठयावृता ।। ४ ।।

ॐ कयान इत्यस्य वामदेव ऋषिः गायत्री छन्दः । इन्द्रो देवता । शान्तिपाठे विनियोगः ।। ४ ।।

भाष्यम्–(सदावृधः) सदावर्धमानः (चित्रः) चायनीयः पूजनीयः (सखा) मित्रभूत इन्द्रः (किया) (ऊतीः) ऊत्या अवनेन तर्पणेन प्रीणनेन वा (नः) अस्माकम् (आभुवत्) आभिमुख्येन भवेत् (शचिष्ठया) प्रज्ञावत्तमया प्रज्ञासहितमनुष्ठीयमानेन (कयावृता) केन वर्ततेन कर्मणा च अभिमुखे भवत् । शचीति कर्मनाम । इन्द्रः कया ऊत्या अस्माकं सहाय

आभिमुख्येन भवति तथा–अतिशयवत्या यागक्रिययाऽस्माकं सखा भवतीति विशदार्थः (यजु० ३६।४) ।।४।।

भावार्थ––सदा वृद्धि करनेवाले विचित्र वा पूज्य इन्द्र किस तर्पण वा प्रीतिसे किस वर्तमान अतिशय क्रियाद्वारा हमारे सहायक अभिमुख होता है, अर्थात् हम क्या उत्तम कर्म करें, क्या क्रिया करें जिससे परमात्मा हमारे सहायकारी हों और अपनी पालनशक्तिद्वारा हमारे निरंतर वृद्धिकारी सखा हों ।।४।।

मन्त्रः

कस्त्वांसत्योमदांनाम्मꣳहिष्ठोमत्सदन्धंसः ॥ दृढा-चिदारुजेव्वसुं ॥ ५ ॥

ॐ कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । गायत्री छं० । इन्द्रो देवता । वि० पू० ॥ ५ ॥

भाष्यम्–हे इन्द्र (मदानाम्) मदयन्ति तानि मदानि मदजनकानि हवींषि तेषां-मध्ये (मंहिष्ठः) श्रेष्ठः अत्यन्तमदजनकः (अन्धसः) अन्नस्य सोमरूपस्य (कः) कः अंश (त्वा) त्वाम् (मत्सत) माद्यति मत्तं करोति 'मदी–हर्षे' येनांशेन मत्तः सन् (दृढाचित्) दृढान्यपि (वसु) वसूनि धनानि कनकादीनि त्वम् (आरुजे) 'रुजो–भंगे' आरुजसि चूर्ण-यसि दातुं भनक्षि पङ्क्त्का भङ्क्त्वा ददासीत्यर्थः (यजु० ३६।५) ।।५।।

भावार्थ––हे परमेश्वर ! सोमरूप अन्नका कौनसा प्रसन्नताओंका अत्यन्त करने वाला अंश आपको प्रसन्न करता है, अर्थात् सब अन्नोंमें कौनसा अन्न आपको अधिक तृप्त करता है, जिस अंशसे प्रसन्न होकर आप दृढतासे रहनेवाले सुवर्णादि धनको भक्तोंके निमित्त चूर्ण कर अर्थात् विभाग कर देते हो ।।५।।

मन्त्रः

अभीषुणꣳसखीनामविताजंरितॄणाम्शतम्भंवास्यू-तिभिः ॥ ६ ॥

ॐ अभीषुण इत्यस्य वामदेव ऋषिः । गायत्री छन्दः । इन्द्रो देवता । वि० पू० ॥ ६ ॥

भाष्यम्–हे इन्द्र त्वम् (सखीनाम्) समानख्यातीनाम् (जरितॄणाम्) स्तोतॄणाम् (अविता) रक्षिता (शतम्) शतेन बह्वीभिः (ऊतिभिः) रक्षाभिः सह (नः) अस्माकम्

(सु) सुष्ठु (अभिभवासि) अभिमुखो भव भक्तानां पालनाय नानारूपाणि दधासीत्यर्थः (यजु० ३६।६)।।६।।

भावार्थ—हे परमेश्वर तुम मित्रोंके और स्तुति करनेवाले हम ऋत्विजोंके पालन करनेवाले हो तथा हमसे भक्तोंकी रक्षाके निमित्त भलीप्रकार अभिमुख होनेद्वारा बहुत रूप होते हो तथा हमसे भक्तोंकी रक्षाके निमित्त भलीप्रकार अभिमुख होनेद्वारा बहुत रूप उपाय अवलंबन करते हो ।।६।।

मन्त्रः

कयात्वन्नंऽऊत्याभिप्प्रमंन्दसेव्वृषन् ।। कयांस्तोतृब्भ्यऽआभंर ।। ७ ।।

ॐ कयात्वमित्यस्य दधीच ऋषिः । गायत्री छन्द । इन्द्रो देवता । शान्तिपाठे वि० ।। ७ ।।

भाष्यम्(वृषन्) वर्षतीति वृषा हे सेक्तः इन्द्र (कया) (ऊत्या) केन तर्पणेन हविर्दानेन (नः) अस्मान् (अभिप्रमन्दसे) अभिमोदयसि (कया) ऊत्या तृप्त्या (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्तृभ्यः यजमानेभ्यः (आभर) आहर आहरसि धनदातुमितिशेषः (तद्वयेन तथा वयं कुर्म इति शेषः । (यजु० ३६।७) ।।७।।

भावार्थ—हे सब कामनाओंके वर्षानेवाले आप किस तृप्ति वा हविदानसे हम को प्रसन्न करते हो, किस ऊतिद्वारा स्तुति करनेवाले यजमानोंके निमित्त धनदान करनेको लाते हो अर्थात् क्रियावश होकर स्तुति करनेवालों को पूर्ण मनोरथ करते हो ।।७।।

मन्त्रः

इन्द्रोविश्श्वंस्यराजति ।। शन्नोंऽअस्तुद्द्विपदेशञ्चतुष्प्पदे ।। ८ ।।

ॐ इन्द्र इत्यस्य दधीच ऋषिः । द्विपदा विराट् छन्दः । इन्द्रो देवता । वि० पू० ।। ८ ।।

भाष्यम्–(विश्वस्य) सर्वस्व जगतः(इन्द्रः)परमेश्वरः महावीरः आदित्यो वा यः (राजति) देदीप्यते (नः) अस्माकम् (द्विपदे) द्विपदां पुत्रादीनाम् (शम) सुखरूपः (अस्तुः) अस्तु (चतुष्पदे) चतुष्पदां चतुष्पदां गवादीनाञ्च (शम्) सुखरूपोऽस्तु (यजु० ३६।८) ।।८।।

भावार्थ—सबका स्वामी परमेश्वर प्रकाश करता है, हमारे पुत्रादिमें कल्याण हो-चौपायोंमें कल्याण हो अर्थात् परमैश्वर्यसंपन्न परमदेवता इस संपूर्ण संसारका राजा है, वह क्या द्विपद क्या चतुष्पदको निर्माण करके ही कल्याण विधानमें तत्पर रहता है ॥८॥

मन्त्रः

शन्नोऽमित्रः शंवरुणः शन्नोभवत्वर्यमा ॥ शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नोविष्णुरुरुक्रमः ॥ ९ ॥

ॐ शन्न इत्यस्य दधीच ऋषिः । अनुष्टुप् छंदः । सूर्यो देवता शान्तिपाठे विनियोगः ॥ ९ ॥

भाष्यम्–(मित्रः) मित्रो देवः मेद्यति भक्तेषु स्निह्यतीति मित्रः(नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपो भवतु (वरुणः) वरुणो देवो वृणोत्यङ्गीकरोति भक्तमिति वरुणो देवः (शम्) सुखरूपो भवतु (अर्यमा) इयर्ति गच्छति भक्तं प्रतीत्यर्यमा (शम्) अस्माकं सुखरूपो भवतु (इन्द्रः) देवेशः (नः) अस्माकं सुखरूपो भवतु (बृहस्पतिः) बृहताम्पतिर्देवगुरुः (नः) अस्मकाम् (शम्) सुखरूपो भवतु (उरुक्रमः) उर्विस्तीर्णः क्रमः पादन्यासो यस्य सः (विष्णुः) परमेश्वरः (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपो भवतु । (यजु० ३६।९) ॥९॥

भावार्थ—मित्रदेवता हमारे निमित्त सुखरूप हों, भक्तके अंगीकार करनेवाले वरुण सुखरूप हों, भक्तके प्रति गमनशील अर्यमा हमारे निमित्त सुख करें, देवेश हमको कल्याण करे, देवगुरु और विस्तीर्णपादन्यास वाले व्यापक विष्णु भगवान हमारे कल्याणकारी हों ॥९॥

मन्त्रः

शन्नोवातः पवताः शन्नस्तपतुसूर्य्यः शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्ज्जन्योऽअभिवर्षतु ॥ १० ॥

ॐ शन्न इत्यस्य दधीच ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । वातादयो देवताः । वि० पू० ॥ १० ॥

भाष्यम्–(वातः) वायुः (न) अस्माकम्(शम्)सुखकारी अपरुषः अव्याधिजनकश्च (पवताम्) बहताम्(सूर्य्यः)जनान् स्वस्वव्यापारेषु प्रेरयति सूर्यः (शम्) सुखरूपः

अदहनो भेषजरूपश्च (नः) अस्माकम् (तपतु) किरणान् विस्तारयतु (पर्जन्यः) पिपर्ति पूरयति जनमिति पर्जन्यः पर्जन्येशः (देवः) देवः (कनिक्रदत्) अत्यन्तं क्रन्दतीति शब्दं कुर्वन् (नः) अस्माकम् (शम्) सुख करम् (अभिवर्षतु) काशनिक्षाररहितं यथा तथा अभिसिञ्चतु। (यजु० ३६।१०) ।।१०।।

भाषार्थ–उसकी कृपासे वायु हमको सुखरूप वहन करो, सूर्य हमको कल्याण के निमित्त ताप दान करो मनुष्योंको जलसे तृप्त करनेवाला शब्दायमान देव हमको सुखरूप होकर वर्षा करो ।।१०।।

मन्त्रः

अहानिशम्भवन्तुनःशꣳरात्रीःप्प्रतिधीयताम् ॥ शन्नऽ इन्द्राग्नीभवतामवोभिःशन्नऽइन्द्रावरुणारातहव्या ॥ शन्नऽइन्द्रापूषणाव्वाजसातौ शमिन्द्रासो मासुविताय-शꣳय्योः ॥ ११ ॥

ॐ अहानीत्यस्य दधीच ऋषिः। द्विपदा गायत्री छं०। अहो रात्र्यादयो देवताः वि० पू० ॥ ११ ॥

भाष्यम्–(अहानि) दिनानि (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपाणि (भवन्तु) भवन्तु (रात्रीः) रात्रीः (शम्) सुखरूपाः अस्मासु (प्रतिधीयताम्) प्रतिदधातु महावीर इति शेषः। (इन्द्राग्नी) इन्द्राग्नी (अवोभिः) पालनैः कृत्वा (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपौ भवताम् (रातहव्या) रातं दत्तं हव्यं ययोस्तौ रातहव्यौ हवितृप्तौ (इन्द्रावरुणौ) इन्द्रावरुणौ (नः) अस्माकम् (शम्) शम्भवताम् (वाजसातौ) वाजस्य अन्नस्य सातौ निमित्त भूते (इन्द्रापूषणा) इन्द्रपूषसंज्ञौ देवौ (नः) अस्माकम् (शम्) सुखरूपौ भवताम्। तथा (सुविताय) साधुगमनाय साधुप्रवसाय वा तथा (शम्) रोगाणां शमनाय (योः) यवनाय पृथक्करणाय च भयानां रोगं भयञ्च निवर्त्य (इन्द्रासोमा) इन्द्रसोमौ देवौ (शम्) सुखरूपौ भवताम् (यजु० ३६।११) ?।।११।।

भाषार्थ–उसी परमात्माकी कृपासे संपूर्ण दिन हमारे निमित्त कल्याणरूप हों, संपूर्ण रात्री कल्याणविधान करें, इन्द्र और अग्नि अपनी पालनाओंसे हमको सुखरूप हों, वृष्टि-प्रद इन्द्र और वरुण हमको कल्याण विधान करें, अन्नको उत्पन्न करनेवाले इन्द्र और पूषा देवता हमको सुखकारी हों, इन्द्र और सोमदेवता श्रेष्ठ गमन वा श्रेष्ठ उत्पत्तिके निमित्त तथा रोगोंको शान्त करनेके निमित्त रोग भयके पृथक् करनेके निमित्त सुखकारी हों अथवा सुखकारी इन्द्र सोमदेवता हमको कल्याणकारी हों ।।११।।

मन्त्रः

शन्नोंदेवीरभिष्टयऽआपोंभवन्तुपीतयेंशंय्योरभिस्रव-न्तुनः ॥ १२ ॥

ॐ शन्न इत्यस्य दधीच ऋषिः । गायत्री छं० । आपो देवताः वि० पू० ॥ १२ ॥

भाष्यम्–(देवीः) देव्यः दीप्यमानाः (आपः) जलानि (नः) अस्माकम् (अभिष्टये) अभिषेकायाभीष्टाय वा (पीतये) पानाय (च) (शम्) सुखरूपाः (भवन्तु) भवन्तु, अस्माकं स्नाने पाने चापः सुखयित्र्यो भवन्तु । आपः (शंयो) रोगाणां शमनं भयानां यवनं पृथक्करणं च (अभिस्रवन्तु) (नः) अस्माकं भयरोगनाशं कुर्वन्त्वित्यर्थः (यजु० ७३६।१२) ।।१२।।

भावार्थ–दीप्मान जल हमारे अभिषेक अभिष्ट और पानके निमित्त सुखरूप हों, हमारे स्नान पानमें जल सुखरूप हों, रोगोंके शमन और भयके पृथक् करनेमें स्रवण करें अर्थात् परमात्माके प्रसादसे जल हमको सुखकारी हों, अर्थात् उत्तम जलपान करनेको मिलें जिससे नीरोग रहें ।।१२।।

मन्त्रः

स्योनापृथिविनोभवान्नृक्षरानिवेशंनी ॥ यच्छांनःशर्म्मसप्रथाः ॥ १३ ॥

ॐ स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । त्रिष्टुप् छं० । पृथिवी देवता । वि० पू० ॥ १३ ॥

भाष्यम्–(अनृक्षरा) अक्षर। कण्टकः कन्तपो वा कण्वतेर्वा कृन्ततेर्वा स्यादुगति कर्मणेति (निरुक्त० ९।३२) तद्ग्रहणं चौरदायादिदुःखनिवृत्त्यर्थम् । न सन्ति ऋक्षरा-कण्टकाः दुःखदायिनो यस्यां सा अनृक्षरा (निवेशिनी) निविशन्ति जना यस्यां सा तथा । (सप्रथाः) प्रथनं प्रथः विस्तारः प्रथसा सह वर्तमाना सप्रथाः सर्वतः पृथुः (पृथिवि) हे पृथिवि त्वम् (नः) अस्माकम् (स्योना) सुखरूपा (भव) भव । किञ्च (नः) अस्मभ्यम् (शर्म) शरणम् (यच्छ) देहि (यजु० ३६।१६) ।।१३।।

भाषार्थ–हे भूमि ! कंटकहीन अर्थात् दुःखदायियोंसे हीन सुखसे बैठने योग्य सब ओरसे पृथु हमको सुखरूप हो, हमको कल्याण दो अर्थात् पृथिवीमें स्थित सुकोमल विस्तृत

यह शय्या हमको सुखकारी हो, जल हमारे पापोंको दूर करें, वा अप्रूप परमेश्वर हमारे पापोंको भस्म करें, अथवा यह जल हमारे शरीरका मल दूर करके हमको शुचि करें ।।१३।।

मन्त्रः

आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऽऊर्जेदधातन ॥ महेरणायच-क्षसे ॥ १४ ॥

ॐ आपोहिष्ठेत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः गायत्री छन्दः । आपो देवताः । वि० पू० ॥ १४ ॥

भाष्यम्–(आपः) हे आपो याः यूयमेव (मयोभुवः) सुखस्य भावयित्र्यः (स्थ) भवथ स्नानपानादिहेतुत्वेन सुखोत्पादकत्वमपां प्रसिद्धं तास्तादृश्यो यूयम् (नः) अस्माकम् (ऊर्जे) रसाय (दधातन) स्थापयत यथा वयं सर्वस्य भोग्यस्य रसस्य भोक्तारो भवेम तथा ऽस्मान्कुरुतेति भावः। (किञ्च (महे) महते (रणाय) रमणीयाय चक्षसे दर्शनाय चास्मान् दधातनेत्यनुवर्तते ।महद्रमणीयं दर्शनं ब्रह्मसाक्षात्कारलक्षणं तदस्माकं कुरुत । ऐहिकपारलौकिकसुखं वत्त तृचोभावः। (यजु० ३६।१४) ।।१४।।

भाषार्थ–हे जलसमूह तुम सुखके करनेवाले सुखकी भावना करनेवाले स्नान-पान आदिसे सुखके उत्पादक हो । हमारे बड़े रमणीय दर्शनके निमित्त अर्थात् ब्रह्मसाक्षात्कार लक्षणयुक्त और निश्चय ही रसानुभव वा ब्रह्मानंदके अनुभवके निमित्त हमको स्थापना करो ।।१४।।

मन्त्रः

योवं÷शिवतंमोरसस्तस्यभाजयतेहनं÷ ॥ उशतीरिव-मातंर÷ ॥ १५ ॥

ॐ योव इत्यस्यसिन्धुद्वीप ऋषिः । गायत्री छं० । आपो देवता । वि० पू० ॥ १५ ॥

भाष्यम्–हे आपः (वः) युस्माकम् (यः) (शिवतमः) शान्ततमः सुखैकहेतुः (रसः) रसोऽस्ति (इह) अस्मिन्कर्मणि इह लोके वा स्थितान् (नः) अस्मान् (तस्य) तस्य रसस्य (भाजयत) भागिनः कुरुत । तत्र दृष्टान्तः (उशतीः) उशत्या कामयमानाः प्रीतियुक्ताः (मातरः) मातरः (इव) यथा स्वकीयस्तन्यरसं वारं पाययन्ति तद्वत् (यजु० ३३।१५) ।।१५।।

भावार्थ–हे जलो ! तुम्हारा शान्तरूप सुखका एकही कारण रस इस कर्म वा इस लोकमें है हमको उस रसका भागी करो, प्रीतियुक्त माता जैसे अपने स्तनोंको बालकोंको पिलाती है ।।१५।।

गुढार्थ–हे परमात्मन् ! आपका जो शांतरूप ब्रह्मानंद है कृपा कर हमको उस अमृतका भागी करो ।।१५।।

मन्त्रः

तस्म्मा॒ऽअरं॑ङ्गमामवो॒यस्य॒क्षया॑य॒जिन्व॑थ । आपो॑ज॒नयं॑थाचनः ॥ १६ ॥

ॐ तस्मा इत्यस्य सिंधुद्वीप ऋषिः गायत्री छन्दः । आपो देवताः वि० पू० ॥ १६ ॥

भाष्यम्–(आपः) हे आपः यूयम् (यस्य) पापस्य (क्षयाय) विनाशाय अस्मान् (जिन्वथ) प्रीणयथ (तस्मै) तादृशाय पापक्षयाय (अरम्) क्षिप्रम् (वः) अस्मान् (गमाय) गमयार्थं वधं शिरसि प्रक्षिपामेत्यर्थः। यद्वा– (यस्य) अन्नस्य (क्षयाय) निवासार्थम् यूयमौषधीः (जिन्वथ) तर्पयथ तस्मै तदन्नमुद्दिश्य वयम् (अरम्) पर्य्याप्तं यथा भवति तथा (वः) अस्मान् (गमाम) गच्छाम। किञ्चहे आपः (नः) अस्मान् (जनयथ च) पुत्रपौत्रादिजनने प्रयोजतेत्यर्थः । यद्वा– हे आपः वः युष्मत्सम्बधिनस्तस्य पर्याप्ति वयं गमाम गच्छेम यस्य क्षयाय चतुर्थी षष्ठ्यर्थे । क्षयस्य निवासस्य जगतामाधारभूतस्य यस्याहुतिपरिणामभूतस्य रसस्यैकदेशेन यूयं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत् जिन्वथ तर्पयथ पञ्चाहुतिपरिणामक्रमेणेति भावः। हे आपः नोऽस्मान् तत्र भोक्तृत्वेन जनयथ उत्पादयथ ।।१६।।

भावार्थ–हे जलो ! तुम्हारे संवंधी उस रसके निमित्त हम शीघ्र प्राप्तिको चलें जिसके निवास जगत्के आधारभूत अर्थात् आहुतिपरिणामभूत जिस रसके एकदेशसे तुम ब्रह्मासे स्तम्बपर्यन्त जगत्को तृप्त करते अर्थात् पंचाहुतिके परिणामक्रमसे तृप्त कर प्रसन्न करते हो और उसके भोगेंसे हमको उत्पन्न करते हो, अथवा जिसके निवाससे तुम प्रसन्न होते हो उस गुण वा रसकी प्राप्ति के निमित्त विशेषकर हम तुम्हारे निकट प्राप्त हैं, हे जलो! तुम हमको प्रजा उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य दो, परमात्माकी प्रार्थना भी इसी मंत्रमें है, जिसके प्रसादसे मुक्तिका सुख प्राप्त होता है ।।१६।।

मन्त्रः

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ॥ वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

ॐ द्यौरित्यस्य दधीच ऋषिः। शक्वरी छन्दः। विश्वेदेवा देवताः। शान्तिपाठे विनियोगः ॥ १७ ॥

भाष्यम्–(द्यौः) द्युलोकरूपा या (शान्तिः) शान्तिः (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षरूपा च या (शान्तिः) शान्तिः (पृथिवी) भूलोकरूपा या (शान्तिः) शान्तिः (आपः) जलरूपा या (शान्तिः) शान्तिः (ओषधयः) ओषधिरूपा या (शान्तिः) वनस्पतयः वनस्पतिरूपा या शान्तिः (विश्वदेवाः) सर्वदेवरूपा या (शान्तिः) शान्तिः (ब्रह्म) त्रयीलक्षणपरं वा तद्रूपा या शान्तिः) शान्तिः (सर्वम्) सर्वजगद्रूपा या (शान्तिः) (शान्तिरेव शान्तिः) या स्वरूपतः शान्तिः (या) शान्तिः (मा) मां प्रति (एधि) अस्तु। महावीरप्रसादात् सर्वं शान्तिरूपं मां प्रत्यस्त्वित्यर्थः। यद्वा –द्यौरित्यादिषु विभक्तिव्यत्ययः।पृथिव्यामप्स्वोषधिषु सर्वस्मिश्च या शान्तिः वा मां प्रत्यस्त्वित्यर्थ (यजु० ३६) १७ ॥१७॥

भाषार्थ––द्युलोक रूप शांति, और अन्तरिक्षरूप शांति, पृथिवीरूप शांति, जलरूप शांति औषधिरूप शांति, वनस्पतिरूप शांति, विश्वेदेवासंबंधि शांति, वा सर्वदेवरूप शांति त्रयी-लक्षण युक्त शांति, सर्वजगत्‌रूप शांति, स्वरूपसेही शांति, जो शांति है वह शांति मेरे प्रति हो अर्थात् यह सब मुझको शान्तरूप हो ॥१७॥

मन्त्र

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ॥ मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ॥ मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

ॐ दृत इत्यस्य दधीच ऋषिः । भुरिगार्षीजगतीछन्दः । महावीरो । देवता । वि० पूर्ववत् ॥ १८ ॥

भाष्यम्-(दृते) दृ विदारे विदीर्णे जराजर्जरितेऽपि शरीरे हे महावीर (मा) माम् (हर्ठ०ह) दृढीकुरु । यद्वा-दृते विदीर्णे कर्मणि मां दृहं अच्छिद्रं कर्म कुरु । यद्वा-सुषिर त्वात् हेक्तृत्वाच्च दृति-शब्देन महावीरः हे दृते महावीर मां त्वं दृढीकुरु कथं दार्ढ्यम्, तदाह-(सर्वाणि भूतानि) प्राणिनः (मा) माम् (मित्रस्य) मित्रस्य (चक्षुषा) नेत्रेण (समीक्षन्ताम्) सम्यक् पश्यन्तु मित्रदृष्ट्या सर्वे मां पश्यन्तु नारिदृष्ट्या सर्वेषां प्रियो भूयासमित्यर्थः) (अहम्) अहमपि (सर्वाणि भूतानि) प्राणिजातानि (मित्रस्यचक्षुषा) मित्रदृष्ट्या (समीक्षे) पश्यामि सर्वे मे प्रियाः सन्तु (मित्रस्य चक्षुषा) मित्रदृष्ट्या (समीक्षामहे) वयं पश्यामः। परस्पराद्रोहेण सर्वानहिसन्तो मित्रदृष्ट्या पश्याम इति सरलार्थः। (यजु० ३६।१८ ।।१८।।

भाषार्थ—हे सेचनसमर्थ देव । मुझको दृढ कीजिये संपूर्ण प्राणी मुझको मित्रके नेत्रों-से अवलोकन करें, मैं सब प्राणियोंको मित्रकी चक्षुसे देखता हूँ, अर्थात् सब मुझे प्यारे हों, अर्थात् मित्रचक्षु शान्त होती है, न मित्र किसीको मारता न मित्रकी कोई मारता है, इस प्रकार परस्पर किसी को अहित न विचारते हम मित्रको चक्षुसे सबको अवलोकन करें ।।१८।

मन्त्रः

दृतेदृर्ठ०हमाज्योक्तेसन्दृशिजीव्व्यासञ्ज्योक्तेसन्दृशि-जीव्व्यासम् ॥ १९ ॥

ॐ दृत इत्यस्य दधीच ऋषिः । आर्ष्युष्णिक् छन्दः महावीरो देवता । शान्ति पाठे वि० ॥ १९ ॥

भाष्यम्-(दृते) हे वीर (मा)मां (दृ ह) दृढीकुरु, आदरार्थं पुनर्वचनम् । हे महावीर (ते) तव (सन्दृशि) सन्दर्शने अहम् (ज्योक्) चिरम् (जीव्यासम्) जीवेयम् । पुनरुक्तिरादरार्था हे देवेश ते सन्दृशि ज्योक् जीव्यासम् ।चिरञ्जीवेयमित्यर्थः। (यजु० ३६।१९ ।।१९।।

भाषार्थ—हे महावीर परमदेव । मुझको दृढ करो, तुम्हारी दृष्टिमें वा आपके दर्श-नमें चिरकालतक मैं जीवित रहूँ, आपके दर्शन करता दीर्घकालतक मैं जीवित रहूँ ।।१९।।

मन्त्रः

नमस्तेहरसेशोचिषेनमस्तेऽअस्त्वर्चिषे ॥ अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तुहेतयः पावकोअस्मभ्यंᳬशिवोभव ॥ २० ॥

ॐ नमस्तइत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । भुरिगार्षी । बृहती छं० । अग्निर्देवा चित्यारोहणे वि० ॥ २० ॥

भाष्यम्–(हिरण्यसकलसहितं स्रुक्स्थमाज्यं दधिमधुघृतकुशमुष्टियुता) पात्री एतद्द्वय मादायाध्वर्युश्चित्याग्निमारोहति ब्रह्मयजमानौ त्वग्नर्दक्षिणत उपविशत इति हे अग्ने (ते) तव (हरसे) हरति सर्वरसानीति हतस्मस्मै (शोचिषे) शोचनहेतवे तेजसे (नमः) नमोऽस्तु (ते) तव (अर्चिषे) पदार्थप्रकाशकाय तेजसे (नमः) नमोऽस्तु (ते) तव (हेतयः) ज्वालाः (अस्मत्) अस्मत्यकाशात् (अन्याः) अन्यान्यस्मद्विरोधिनः विरुद्धाः (तपन्तु) दहन्तु एवं त्वम् (पावकः) शोधकः सन् (अस्मभ्यम्) (शिवः) कल्याणः (भव) एतदर्थं च नमस्कृतोऽग्निरस्माकं विरुद्धान् दहत्वस्माकं कल्याणाय भवित्वित्यर्थः । यजु० ३६।२०)।।२०।।

भाषार्थ—हे अग्ने । तुम्हारे सब रसोंके आकर्षण करनेवाले तेजस्वरूप ज्वालाके निमित्त नमस्कार है तुम्हारे पदार्थ प्रकाशक तेजके निमित्त नमस्कार हो, आपकी ज्वाला हम से दूसरोंको तपाओ हमको शोधक कल्याण कारक हो ।; २०।।

मन्त्रः

नमस्तेअस्तुविद्युतेनमस्तेस्तनयित्नवे ॥ नमस्तेभगवन्नस्तुयतःस्वः समीहसे ॥ २१ ॥

ॐ नमस्त इत्यस्य दधीच ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । विद्युत्स्तनयित्नुरूपे देवते । वि० पू० ॥ २१ ॥

भाष्यम्–(भगवन्) हे भगवन् ! हे महावीर (विद्युते) विद्युद्रूपाय (स्तनयित्नवे) स्तनयित्नुः गर्जितं तद्रूपाय (ते) (नमः) नमः (अस्तु) अस्तु (यतः) यतः कर-

णात् (स्वः) स्वर्गंतुं त्वं (समीहसे) चेष्टसेऽतः (ते) तुभ्यम् (नमोऽस्तु) नतिरस्तु। (यजु० ३६।२१) ।।२१।।

भावार्थ—हे भगवन्। आपके विद्युत रूपके निमित्त नमस्कार हो, गर्जनारूप आपके निमित्त नमस्कार है जिस कारण स्वर्गसुख देनेको चेष्टा करते हो, इस कारण आपके निमित्त बारंबार नमस्कार हो, अर्थात् आपके अनेक रूप हैं, आप सब प्रकार हमारे सुखके निमित्त यत्न करते हो आपको प्रणाम है ।।२१।।

मन्त्रः

यतो॑यतः स॒मीह॑से॒ततो॑नो॒ऽअभ॑यङ्कुरु ॥ शन्नः॑कुरु प्र॒जाभ्यो॒भ॑यन्नः प॒शुभ्यः॑ ॥ २२ ॥

ॐ यत इत्यस्य दधीच ऋषिः। भुरिक् प्राजापत्या त्रिष्टुप् छन्दः। परमात्मा देवता। वि० पू० ॥ २२ ॥

भाष्यम्—हे महावीर (यतः) यतः यस्माद्यस्माद्रूपात् समीहसे।यद्वा-यस्माद्यस्मा-दुश्चरितात्त्वम् (समीहसे) अस्मास्वपकर्तुञ्चेष्टसे (नः) ततस्ततः (नः) अस्माकम् (अभयम्) निर्भयम् (कुरु) कुरु किञ्च-(नः) अस्माकम् (प्रजाभ्यः) प्रजाभ्यः (शम्) सुखम् (कुरु) कुरु (नः) अस्माकम् (पशुभ्यः) पशुभ्यः (अभयम्) भीत्यभावं कुरुः (यजु० ३९।२२) ।।२२।

भाषार्थ—हे भगवन्। आप जिसजिस रूपसे चेष्टा करते हो अथवा जिसजिस दुश्चरित्रसे हमको बचानेकी इच्छा करते हो, अथवा जिस समय हमको सब प्रकार सुख करनेके निमित्त इच्छा करते हो उस उस रूपसे वा दुश्चरित्रसे वा चेष्टासे हमको भय रहित करो हमारी प्रजाओंके निमित्त सुख करो, हमारे पशुओंके निमित्त सुख कीजिये, अर्थात् हमारी प्रजा और पशु भय रहित होकर आपके दिये हुए सुख भोगमें समर्थ हों ।।२२।।

मन्त्रः

सु॒मि॒त्रि॒या न॒ऽआप॒ऽओष॑धयः सन्तु दु॒र्म्मि॒त्रि॒यास्तस्म्मै॑ सन्तु॒यो॒ऽस्मान्द्वेष्टि॒यञ्च॑व॒यंद्वि॒ष्मः ॥ २३ ॥

ॐ सुमित्रियान इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । निचृत्प्राजापत्या गायत्री छं० । आपो देवताः । जलाभिमन्त्रणे वि० ॥ २३ ॥

भाष्यम्–(आपः) जलानि (ओषधयः) ओषधयः (नः) अस्माकम् (सुमित्रियाः) साधुमित्रत्वेनावस्थिताः (सन्तु) भवन्तु (यः) शत्रुः (अस्मान्) (द्वेष्टि) वैरं करोति (वयं च) वयमपि (यम्) शत्रुम् (द्विस्मः) द्वेषं कुर्मः (तस्मै) उभयात्मकाय शत्रवे आप ओषधयश्च (दुर्मित्रियाः) अमित्रत्वेनावस्थिताः सन्तुः (यजु० ३६।२३) ।।२३।।

भाषार्थ—हे परमेश्वर । जल वा औषधि हमारे निमित्त सुखदायक हों, और जो हमसे द्वेष करता है वा हम जिससे द्वेष करते हैं, उसके लिये दुःखदायक हों आशय यह कि हम तो किसीसे द्रोह करना नहीं चाहते पर जो हमसे द्वेष करते हैं तब हमारे मनमें द्वेष होता है आपकी कृपासे द्वेषी शत्रुको औषधि जल दुःखरूप हों ।।२३।।

मन्त्रः

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्क्रमुच्चरत् ॥ पश्येमशरदः शतञ्जीवेमशरदः शतठं शृणुयामशरदः शतम्प्रब्रवामशरदः शतमदीनाः स्यामशरदः शतम्भूयश्चशरदः शतात् ॥ २४ ॥

इतिसठंहितायांरुद्रपाठेशान्त्यध्यायः ॥

ॐ तच्चक्षुरित्यस्य दधिच ऋषिः । ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः । सूर्यो देवता । वि० पू० ॥ २४ ॥

भाष्यम्–एतैर्मन्त्रैर्यो महावीरोऽस्माभिः स्तुतः (तत्) तत (देवहितम्) देवैर्हितं स्थापितम् ।यद्वा-देवानां हितं प्रियम् (शुक्रम्) शुक्लं पापासंसृष्टं शोचिष्मद्वा तत् (चक्षुः)

जगतां नेत्रभूतमादित्यस्वरूपम् (पुरस्तात्) पूर्वस्यां दिशि (उच्चरत्) उच्चरति उदेति तस्य प्रसादात् (शतम्) (शरदः) वर्षाणि (पश्येम) अव्याहत चक्षुरिन्द्रिया भवेम (शतं शरदः) (जीवेम) अपराधीनजीवना भवेम (शतं शरदः) शतं समाः (शृणुयाम)स्पष्ट-श्रोत्रेन्द्रिया भवेम (शतं शरदः) (प्रब्रवाम) अस्खलितवागिन्द्रिया भवेम ((शतं शरदः) (अदीनाः) (स्याम्) न कस्याप्यग्रे दैन्य कुर्याम (शतात् शरदः)शतवर्षोपर्यपि (भूयःच) बहुकालं पश्येमेत्यादि योज्यम्। (यजु० ३६।२४) ।।२४।।

भावार्थ––वह देवताओं द्वारा स्थापित अथवा देवताओंके हितकारी जगत्के नेत्र-भूत शुक्लमलसे रहित शुद्ध वा प्रकाशरूप पूर्व दिशामें उदय होता है, परमात्माके प्रसादसे सौ शरद् पर्यन्त देखें, अर्थात् शतवर्ष पर्यन्त हमारे नेत्रेन्द्रियकी गति निर्बल न हो, सौ शरद् ऋतुओंतक अपराधीन होकर जियें, सौ शरद् पर्यन्त स्पष्ट श्रोत्र इन्द्रियवाले हों, सौ शरद् पर्यन्त भी अस्खलितवाणी युक्त हो, सौ शरद् पर्यन्त दीनता रहित हों, सौ शरदोंसे अधिक कालपर्यन्त भी देखें, सुनें और जीवित रहें ।।२४।।

विशेष–इसका सूर्य्योपस्थानमें भी पाठ होता है, यह सब परमात्माकी प्रार्थना उपासनाके मंत्र हैं ।।२४।।

इति श्रीरुद्राष्टके पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतसंस्कृतार्य्य भाषाभाष्यसमन्वितः शान्त्यध्यायः।।

अथ रुद्रे स्वस्तिप्रार्थनामन्त्राऽध्यायः

मन्त्रः

हरिः ॐ ॥ स्वस्तिनऽइन्द्रोंवृद्धश्श्रंवाःस्वस्तिनः पूषाविश्श्ववेदाः ॥ स्वस्तिनस्ताक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिःस्वस्तिनोबहस्प्पतिर्द्दधातु ॥ १ ॥

ॐ स्वस्तीत्यस्य गौतम ऋषिः । विराट् स्थाना त्रिष्टुप् छन्दः । विश्वेदेवा देवताः । पाठे विनियोगः ॥ १ ॥

भाष्यम्–(वृद्धश्रवाः)वृद्धं प्रभूतं श्रवः श्रवणं स्तोत्रं हविर्लक्षणमन्नं वा यस्य तादृशः (इन्द्रः) इन्द्रः (नः) अस्माकं स्वस्तीत्यविनाशनाम् (स्विति' अविनाशं (दधातु) विदधातु (विश्ववेदाः) विश्वानि वेत्तीति विश्ववेदाः। यद्वा–विश्वानि सर्ववेदवेदांसि ज्ञानानि धनानि वा यस्य तादृशः (पूषा) पोषको देवः (नः) अस्माकम् (स्वस्ति) स्वस्ति विदधातु (अरिष्टनेमिः) नेमिरित्यायुधनाम् (निघं० २।२०) अरिष्टोऽसिंसितो नेमिर्यस्य वा यत्सम्बन्धिनो रथनेमिर्न हिंस्यते सोऽरिष्टनेमिरेवम्भूतः तार्क्ष्यः तृक्षस्य पुत्र गुरुत्मान् (नः) अस्माकम् (स्वस्ति)अविनाशं विदधातु तथा (बृहस्पतिः) देवानां पतिः पालयिता (नः) अस्माकम् (स्वस्ति) अविनाशं विदधातु (यजु ० २५।१९) ।।१।।

भावार्थ--वृद्धश्रवा (बडीकीर्तिवाले) इन्द्र हमारे निमित्त स्वस्ति विधान करें, सर्वज्ञपूषा हमारे निमित्त स्वस्ति विधान करें अरिष्टनेमि तार्क्ष्य (तार्क्ष्य-रथ अर्थात् जो रथकी नेमिकी अर्थात् चक्रधारीकी गति कोई भी रोकनेमें समर्थ नहीं है, तिसकोही अरिष्टनेमि तार्क्ष्य कहते हैं, यहांपर रथरूपसे वर्णन हुआ) हमारे निमित्त स्वस्ति विधान करें, बृहस्पति हमारे निमित्त स्वस्ति विधान करें ।।१।।

मन्त्रः

ॐपय॑ः पृथि॒व्याम्पय॒ऽओष॑धीषु॒पयो॑ दि॒व्य॒न्तरि॑क्षे॒ पयो॑धाः॒पय॑स्वतीः॒प्प्र॒दिश॑ः सन्तु॒मह्य॑म् ॥ २ ॥

ॐ पय इत्यस्य लुशोधानाक ऋषिः । विराट् छन्दः । अग्निर्देवता । वि० पू० ॥ २ ॥

भाष्यम्–हे अग्ने हे देव त्वम् (पृथिव्याम्) भूम्याम् (पयः) रसम् (धाः) धेहि-स्थापय (च) (ओषधीषु)वनस्पतिषु (पयः) रसम् (धाः) स्थापय (दिवि) स्वर्गे च (अन्तरिक्षे च (पयः) रसम् (धाः) स्थापय किञ्च (मह्यम्) मदर्थे (प्रदिशः) दिशो विदिशश्च (पयस्वतीः) पयस्वत्यो रसयुताः सन्तु । आहुतिपरिणामेन पृथिव्यादयो ममाभीष्टदा भवन्त्वित्यर्थः। (यजु० १८।३६) ।।२।।

भावार्थ—पृथिवी देवि हमारे निमित्त (अर्थात् हमको देनेके लिये) रस धारण करे, औषधियें भी हमारे निमित्त रस धारण करें, स्वर्ग लोक और अन्तरिक्ष लोक भी हमारे निमित्त रस धारण करें अर्थात् आहुतिके परिणामसे पृथिवी आदि हमको भगवत्कृपासे अभीष्ट देनेवाले हों ।।२।।

मन्त्रः

ॐ व्विष्ण्णोरराटमसि व्विष्ण्णोः श्नप्त्रेस्त्थो व्विष्ण्णोः स्यूरसि व्विष्ण्णोर्ध्रुवोसि ॥ वैष्ण्णवमसि व्विष्ण्णवे त्वा ॥ ३ ॥

ॐ विष्णोरराटमित्यस्यौतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । याजुषी उष्णिक् छंदः । विष्णुदेवता । हविर्धानोपरिमण्डपकरणे वि० ॥ ३ ॥

भाष्यम्–हविर्धानाख्ये द्वे शकटे दक्षिणोत्तरभागयोः स्थापयित्वा तदावरकत्वेन परितो हविर्धानाख्यं मण्डपं कुर्यात् । स च मण्डपो विष्णुदेवताकत्वाद्विष्णुरित्युपचर्यते विष्णोश्च मूर्तिधरस्य सर्वावयवसद्भावाल्ललाटाख्योऽवयवोस्ति, तद्वद्धविर्धानमण्डपस्यापि पूर्वद्वारवर्तिस्तम्भयोर्मध्ये काचिद्दर्भमाला ग्रथ्यते, तां मालां तद्बन्धनाधारतिर्यग्वंशं वा सम्बोध्यं पुरुषं सम्बोध्य ललाटत्वेनोपचर्यते, हे दर्भमयमालाधारवंश ।त्वं (विष्णो) विष्णुमूर्तित्वेनोपचरितस्य हविर्धानमण्डपस्य (रराटम्) ललाटस्थानीयः (असि असि हेरराटप्रान्तौ युवाम् (विष्णोः) विष्णुनामकस्य हविर्धानमण्डपस्य (श्नप्त्रेस्थः) ओष्ठसन्धिरूपे भवथ (द्वार्य्याः परिषीव्यति लस्यूजनि प्रतिहृतया रज्ज्वा विष्णोः स्यूरसीति कात्यायनः) हे लस्यूजनि त्वम् (विष्णोः') हविर्धानस्य (स्यूरसि) सीव्यन्तेऽनेनेति स्यूः सूचिरसि (विष्णोः) ध्रुवोसीति ग्रन्थीकरोति) हेरज्जुग्रन्थ त्वम् (विष्णोः) हविर्धानस्य (ध्रुवः) ग्रन्थिः (असि) भवसि (प्राग्वंश हविर्धानं निष्ठाप्य वैष्णवमसीत्यालभत इति का०) हे हविर्धानत्वम् (वैष्णवम्) विष्णुदेवताकत्वेन तत्सम्बन्धि (असि) भवसि तस्मात् (विष्णवे) विष्णुप्रीत्यर्थम् (त्वा) त्वां स्पृशामीति शेषः (यजु० ५।२१) ।।३।।

भाषार्थ—हे तिर्यक्वंशचीर । तुम इस यज्ञिय मंडपके रराटी (द्वारके दो खंभोंपर नीचेको मुखवाला अर्द्धवृत्ताकार जो तिरछा वंशचीर होता है उसको रराटी कहते हैं, यही इस मंडपका माथारूप है) होते हो हे रराटी प्रान्तद्वय । तुम दोनों इस यज्ञियमंडपकी ओष्ठ संधिरूप होती हो हे लस्यूजनि । (बडी सुई वा सूजा) तुमही इस यज्ञिय मंडपकी सूची हो, हे रस्सीकी गांठ । तुम इस यज्ञिय मंडपकी गांठ हो, इससे दृढ होवो, हे प्राग्वंश । पूर्वपश्चिमको लम्बा करके स्थापित बांस । इस मंडपकी छतका प्रधान अवलंबन बडाबांस (आडा) तुम इस यज्ञिय मंडपकी छत्तके मध्यवाले प्रधान बांस हो, इस मंडपकी दृढताकी परीक्षा

करनेके लिये तुमको स्पर्श करता हूँ इस मंत्रमें वंशादिमें स्थित सर्वज्ञ देवकी प्रार्थना उस उस रूपसे वर्णन की है ।।३।।

मन्त्रः

ॐ अग्निर्द्देवताव्वातोदेवतासूर्य्योदेवताचन्द्रमादेवता-व्वसवोदेवतारुद्द्रादेवतादित्यादेवतामरुतोदेव-ताव्विश्श्वेदेवादेवताबृहस्प्पतिर्द्देवतेन्द्रोदेवताव्वरु-णोदेवता ॥ ४ ॥

ॐ अग्निरित्यस्य विश्वेदेव ऋषिः । भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् छं० । अग्न्यादयो देवताः । इष्टकोपधाने वि० ॥ ४ ॥

भाष्यम्—इष्टके त्वमग्न्यादिदेवतारूपाऽसि तां त्वामुपद्धामिति सर्वत्र शेषः। अग्न्यादीनां देवतात्वं प्रसिद्धम् । अग्निर्देवता वातो देवतेत्येता वे देवताश्छन्दा ँ सि तान्येवैतदुपदधातीति श्रुतेः सर्वं सुगमम् । (जु० १४।२०) ।।४।।

भावार्थ—अग्नि देवताकी प्रार्थना करता हुआ, यह इष्टका स्थापन करता हूँ । वायु देवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ, सूर्य्य देवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ३, चन्द्र देवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ ४, वसुदेवताओंका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ५, रुद्रदेवताओंका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ ६, आदित्य देवताओंका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ ७, मरुत देवताओं का ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ८, विश्वेदेवा देवताओंका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ९, बृहस्पति देवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ१०, इन्द्र देवताका ध्यान करता हुआ यह इष्टका स्थापन करता हूँ११, वरुण देवताका ध्यान करता आ यह इष्टका स्थापन करता हुँ १२।।४।।

मन्त्रः

ॐ सद्योजातंप्रपद्यामिसद्योजातायवैनमोनमः ॥

भवेभवेनातिभवेभवस्वमांभवोद्भवायनमः ॥ ५ ॥

भाष्यम्–मेधाविनः पुरुषस्य ज्ञानोत्पादनाय महादेवसम्बन्धिषु पञ्चवक्त्रेषु मध्ये पश्चिम वक्त्रप्रतिपादकं मन्त्रमाह– (सद्योजातम्) एतन्नामकं यत्पश्चिमव तवक्त्रेरूपं परमेश्वरं (प्रपद्यामि) प्राप्नोमि तादृशाय (सद्योजाताय) महादेवाय (वै) (नमः) नमोस्तु हेसद्योजात। (भवेभवे तत्तज्जन्मनिमित्तं (मां) माम् (नभवस्व) न प्रेरयेत्यर्थः? किन्तर्हि (अतिभवे) जन्मातिलंधननिमित्तं (भवस्व) तत्त्वज्ञानाय प्रेरय (भवोद्भवाय) भवात्संसारात् उद्धर्त्रे सद्योजाताय (नमः) नमोऽस्तु ।।५।।

भावार्थ––ज्ञान प्राप्तिके निमित्त महादेव सम्बन्धि पंचमुखोंमें पश्चिममुख प्रतिपादक मंत्रका वर्णन करते हैं, सद्योजात नामक परमेश्वरके रूपको प्राप्त होता हूँ सद्योजातके निमित्त प्रणाम है, हे देव। अनेक जन्मोंमें मुझे मत प्रेरण करो, किन्तु जन्मके दूर करनेके निमित्त तत्त्वज्ञानके निमित्त मुझे प्रेरण करो! संसारके उद्धारकर्ता सद्योजातको प्रणाम है ।।५।।

मन्त्रः

वामदेवायनमोज्येष्ठायनमः श्रेष्ठायनमोरुद्रायनमः-
कलविकरणायनमोबलविकरणायनमः ॥ ६ ॥

बलायनमोबलप्रमथनायनमः सर्वभूतदमनायनमोम-
नोन्मनायनमः ॥ ७ ॥

भाष्यम्–उत्तरवक्त्रप्रतिपादकं मन्त्रमाह– (वामदेवायनमः) उत्तरवक्त्ररूपः वाम देवः तस्यैव विग्रहविशेषाः ज्येष्ठादिनामकाः एते महादेवपीठशक्तीनां वामादीनां नवानां पतयः पुरुषाः तेभ्यो नवभ्योः नमस्कारः अस्तु ।।६।।७।।

भावार्थ––उत्तरमुखका प्रतिपादक मंत्र कहते हैं–उत्तरमुखरूप वामदेवको प्रणाम है, उसीके विग्रह ज्येष्ठादिनाम हैं, यह महादेवकी पीठशक्तियोंके स्वामी हैं। वामदेव, ज्येष्ठ,

श्रेष्ठ, रुद्र, कालकल, विकरण, वलविकरण, बल बलप्रमथन, सर्वभूतोंके दमनकरनेवाले, मनोन्मनके निमित्त नमस्कार है ।।६।।७।।

मन्त्रः

अघोरेँभ्योथघोरेँभ्योघोरघोरंतरेभ्यः ॥ सर्वेँभ्यःसर्व्व शर्वेँभ्योनमस्तेअस्तुरुद्ररूपेभ्यः ॥ ८ ॥

भाष्यम्—दक्षिणवक्त्रप्रतिपादकमन्त्रमाह– (अघोरेभ्यः) अघोरनामको दक्षिणवक्त्ररूपो देवः तस्य विग्रहाः अघोराः सात्त्विकत्वेन शान्ताः अन्ये तु (घोराः) राजसत्वेन उग्राः अपरे तु तामसत्वेन (घोरतराः) घोरादपि घोरतराः (शर्व) हे शर्व परमेश्वर (ते) त्वदीयेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यः त्रिविधेभ्यः (सर्वेभ्यः) (रुद्ररूपेभ्यः)सर्वतः सर्वेषु देशेषुसर्वेषु- च कालेषु (नमः) नमः (अस्तु भवतु) ।।८।।

भावार्थ—दक्षिणवक्त्रप्रतिपादक मंत्र कहते हैं–सत्त्वगुणयुक्त होनेसे अघोर, राजस होनेसे घोर और तामससम्बन्धसे घोरतर शर्व प्रलयमें व जगत्के हरनेवाले हम आपके तीन प्रकारके रूपोंको सव देशकालमें प्रणाम करते हैं आपके रुद्र शर्व सब रुपोंको नमस्कार है।।८।।

मन्त्रः

तत्पुरुषायविद्महेमहादेवायंधीमहि ॥ तन्नोरुद्रःप्रचो- दयांत् ॥ ९ ॥

भाष्यम्—प्राग्वक्त्रदेवः तत्वपुरुषनामकः द्वितीयार्थे चतुर्थी । (तत्पुरुषाय) तत्पुरुषं देवं (विद्महे) गुरुशास्त्रमुखाज्जानीमः ज्ञात्वा च (महादेवाय) तं महादेवं (धीमहि) (ध्यायेम) (तत्) तस्मात्कारणात् (रुद्रः) देवः (नः) अस्मान् (प्रचोदयात्) ज्ञानध्यानार्थं प्रेरयतु ।।९।।

भावार्थ—पूर्वमुखप्रतिपादक मंत्र कहते हैं, तत्पुरुषदेवको गुरु शास्त्र मुखसे जानते हैं, जानकर उन महादेवका ध्यान करते हैं, इस कारण वह रुद्र हमको ज्ञान ध्यानके लिये प्रेरणा करें ।।९।।

मन्त्रः

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ॥ ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्माशिवोमेअस्तुसदाशिवोम् ॥ १० ॥

भाष्यम्–ईशानः योयमूर्ध्ववक्त्रो देवः सोयम् (सर्वविद्यानाम) वेदशास्त्रादीनां चतुःषष्टिकलाविद्यानाम् (ईशानः) नियामकः तथा (सर्वभूतानाम्) अखिलप्राणिनाम् (ईश्वरः) नियामकः (ब्रह्माधिपतिः) वेदस्याधिकत्वेन पालकः तथा (ब्रह्मणः) हिरण्यगर्भस्य (अधिपतिः) अधिपतिः तादृशः (ब्रह्मा) ब्रह्मा अस्ति प्रवृद्धः परमात्मा सोयम् (मे) ममानुग्रहाय (शिवः) शान्तः (अस्तु) अस्तु (सदाशिवोम्) स एव सदाशिवः ॐअहं भवामि। ॥१०॥

भाषार्थ––ऊर्ध्वमुखदेवका प्रतिपादक मंत्र । वेदशास्त्रादि विद्या और चौंसठकलाओंके नियामक समस्तप्राणियोंके नियामक वेदके विशेषरूपसे पालक हिरण्यगर्भके अधिपति ब्रह्मारूप सो परमात्मा मुझपर अनुग्रह करनेके लिये शान्तरूप ही मैं सदा शिवरूप हूँ यह ६ मन्त्र तैत्तरीयारण्यकके हैं ॥१०॥

मन्त्रः

ॐ शिवोनमासिस्वधितिस्तेपितानमस्तेअस्तुमामाहिꣳसीः ॥ निवर्त्तयाम्म्यायुषेन्नाद्यायप्रजननायरायस्पोषायसुप्रजास्त्वायसुवीर्य्याय ॥ ११ ॥

शिवोनामासीति व्याख्यातं रुद्राष्टके । ६ । ८ मंत्रव्याख्यायाम् ॥ ११ ॥

भाषार्थ––शिवोनामासि इसकी व्याख्या रुद्रीके ॥६॥ मंत्रमें हो गई ॥११॥

मन्त्रः

ॐ व्विश्श्वानिदेवसवितर्द्दुरितानिपरासुव ॥ यद्भद्रन्तन्नऽ आसुव ॥ १२ ॥

ॐ विश्वानिदेवेत्यस्य नारायण ऋषिः । गायत्री छन्दः । सविता देवता । प्रार्थने वि० ॥ १२ ॥

भाष्यम्–(देवसवितः) हे देवसवितः (विश्वानि) सर्वाणि (दुरितानि) पापानि (परासुव) दूरे गमय (यत्) यत् (भद्रम्) कल्याणम् (तत्) तत् (नः) अस्मान्प्रति (आसुव) आगमय ॥१२॥

भावार्थ—हे सवितादेव हमारे पापोंको दूर करो और जो कल्याण है सो हमको प्राप्त करो ॥१२॥

मन्त्रः

ॐ द्यौꣳशान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवीशान्तिरापꣳशान्तिरोषधयꣳशान्तिः ॥ व्वनस्पतयꣳशान्तिर्व्विश्वेदेवाꣳशान्तिर्ब्ब्रह्मशान्तिꣳसर्व्वꣳशान्तिꣳशान्तिरेव-शान्तिꣳसामाशान्तिरेधि ॥ १३ ॥

ॐ द्यौः शान्तिरिति व्यख्यातम् रुद्राष्टके शान्त्यध्याये॥ १३॥

भावार्थ—द्यौः शान्तिः इसकी व्याख्या शान्त्यध्यायके १७ मंत्रके हो गई ॥१३॥

मन्त्रः

ॐ शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु सर्वारिष्टशान्तिर्भवतु ॥ अनेन रुद्राभिषेककर्मणा कृतेन श्रीभग-

वान्भवानीशङ्करमहारुद्रः प्रीयतां न मम ॥ ॐसदाशिवार्पणमस्तु ॥

इति स्वस्तिप्रार्थनामंत्राऽध्यायः ॥

भावार्थ—शांतिः सब प्रकारसे शांति हो संपूर्ण अरिष्टोंकी शांति हो इस रुद्राभिषेक-कर्मसे श्री भगवान् भवानी शंकर महारुद्र प्रसन्न हों, मेरा इसमें कुछ नहीं सब शंकरका है, यह शिवजीके अर्पण हो ।

स्वस्तिप्रार्थनामें मन्त्राध्याय पूर्ण हुआ

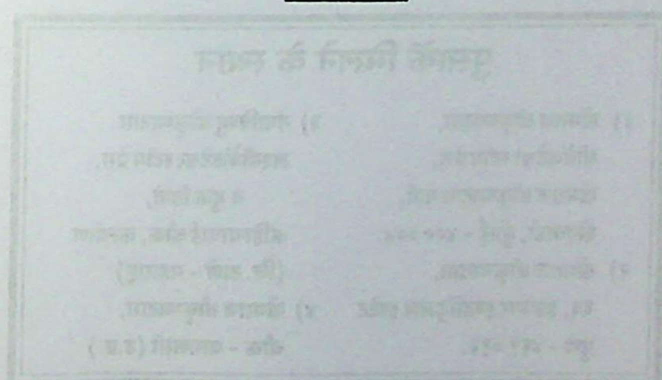
इति श्रीरुद्राष्टके मुरादाबादनिवासि पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतार्य्य-भाषाभाष्यसमन्वितः मन्त्राध्यायः

दोहा

गौरीशंकर पदकमल, प्रेमसहित हिय लाय ।
संस्कृत भाषातिलकसह, कीनो रुद्राध्याय ॥१॥
पढें सुनें कर प्रेम जो, लहें पदारथ चार ।
भक्ति होय श्रीशंभुकी, जो जगमें सुखसार ॥२॥

संवत् ऋतु ऋतु अंक विधु, मास आसाढ़ पुनीत ।
शुक्लपक्ष तिथि चौथ शुभ, चन्द्रवार शिवप्रीत ॥३॥
पूर्ण कियो शुभ ग्रंथ यह, सज्जनकहँ सुखदान
पढ़हिं सुनहिं कर प्रेम जो, पावहिं मोद महान ॥४॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः॥



वैदिक ग्रन्थ

पञ्चत्रिंशदुपनिषद्–मूलमात्र सजिल्द (मोटे अक्षरोंमें)
कलि संतारणोपनिषद्-हिन्दी टीका-सहित (जीर्ण)
कैवल्योपनिषद-मूल
दण्डक शुक्ल यजुर्वेदीय-पत्राकार
भव संतारणोपनिषद्–स्वामी श्री रामप्रपन्नजीकृत हि० टी० सहित
रुद्री शुक्ल यजुर्वेदी-मूल षड्ङ्गन्यासहित (पत्राकार)
रुद्राष्टाध्यायी-हिन्दी टीका सहित
रुद्र भाष्य-श्रीमदभिनव शंकराचार्य प्रणीत
शतपथ ब्राह्मण-सायण भाष्य टिप्पणी सहित प्रथम खण्ड
शतपथ ब्राह्मण-सायण भाष्य तथा टिप्पणी सहित पांच जिल्दों में
शुक्ल यजुर्वेद–(वाजसनेयी) संहिता मूल-संपूर्ण कर्मकांडादिमें अत्यन्त उपयोगी सर्वानुक्रमणिका, अनुवाक प्रतिज्ञासूत्र, याज्ञवल्क्य शिक्षा, स्वरसहित अकारादि क्रमसे मन्त्रानुक्रमणिका सहित स्थूलाक्षरोंमें पत्राकार
श्रुति सिद्धान्त सार संग्रह-(३८ उपनिषदों का सार संग्रह)
श्वेताश्वतरोपनिषद्-अन्वय, पदार्थ, भावार्थसहित अजिल्द
श्री हरिण्यकेशी-याज्ञिकोपयोगी मन्त्र-संग्रह



पुस्तकें मिलने के स्थान

१) खेमराज श्रीकृष्णदास,
श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
खेतवाडी, मुंबई - ४०० ००४.

२) खेमराज श्रीकृष्णदास,
६६, हडपसर इण्डस्ट्रिअल इस्टेट
पुणे - ४११ ०१३.

३) गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,
व बुक डिपो,
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि. ठाणे - महाराष्ट्र)

४) खेमराज श्रीकृष्णदास,
चौक - वाराणसी (उ.प्र.)

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्यावाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

